सुखी जीवन का रहस्य

परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी

सुखी जीवन का रहस्य

(द्वितीय संस्करण)

लेखक :
परम सन्त कैप्टन लालचन्द

प्रकाशक :
आचार्या डॉ. कमला देवी

पत्ता :
डॉ. कमला देवी
C/o. - मास्टर रमेश देशवाल
झज्जर घाटी, नजदीक सर छोटूराम स्कूल,
चरखी दादरी, जिला भिवानी (हरियाणा)
मोबाइल : 94164-75568, 94161-20575

सर्वाधिकार सुरक्षित (सितम्बर, २००४)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी भी माध्यम से
प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना
अविधिमान्य होगा ।

मूल्य : १०.०० रूपये

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	
	भूमिका	
१.	योग्य सन्तान उत्पति व जीवन का आनन्द	१
२.	गुरु की महिमा	२३
३.	कर्म गति रहस्य	३२
४.	मनुष्य जीवन क्या है ?	४१
५.	नाम - दान	४६
६.	मानव धर्म	४९

प्राक्कथन

धर्म के विषय में काफी भटकन के पश्चात् जब मैं अपने गुरु परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी के सम्पर्क में आई तो उनके ज्ञान से मेरी आंखें ही खुल गई कि लोग इस धर्म के वास्तविक तत्व से कितने दूर है ? यह मेरा कोई पूर्वजन्म का ही फल था जो मेरा ऐसी सच्ची महान विभूति से साक्षात्कार हुआ और उनकी अपार कृपा से ही मैं धर्म के इस रहस्य को समझ सकी । उनके सच्चे व वास्तविक ज्ञान से प्रभावित होकर मैंने उनसे बार-बार आग्रह किया कि वे इस विषय में कुछ लिखें, क्योंकि ये महापुरूष पूर्णतया निष्काम व पूर्णकामयोगी है । उनकी पुस्तक लिखने की, मान-सम्मान की व अपने आपको प्रकट करने की कोई इच्छा नहीं थी । आखिरकार मेरे द्वारा बार-बार प्रार्थना किए जाने पर उन्होंने मेरे आग्रह को स्वीकार किया, जिसके फलस्वरूप यह पुस्तक आप लोगों के सामने प्रस्तुत है । अतः मैं उनके प्रति अत्यधिक नतमस्तक हूँ । मुझे पूरी आशा है कि इस पुस्तक को पढ़ने पर लोगों का धर्म सम्बन्धी जीवन भी सुखमय बन जाएगा ।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अपना आर्थिक सहयोग देने वाले सज्जन श्री .जे .सी .गुप्ता (5, Ireland, West Browmwich, U.K.) तथा कार्यकारी अभियन्ता श्री जिले सिंह जी के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ जिनके आर्थिक सहयोग से यह पुस्तक प्रकाशित हुई ।

❐ डॉ. कमला

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक सुखी जीवन का रहस्य लिखने का मेरा यह उद्देश्य है कि मैं अपने गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के पास में बैठा हुआ था और साथ ही उनके शरीर की सेवा कर रहा था तो उन्होंने मुझे कहा कि लालचन्द, मेरी यह असली सेवा नहीं है, जो तुम अब कर रहे हो। मैंने पूछा महाराज फिर आपकी क्या सेवा है ? उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य जाति आज शरीर, मन, धन और अज्ञान के कारण बहुत दु:खी है। मैं जो सत्संगों में आप लोगों को ज्ञान देता हूँ इसका खुद अनुभव करके, बिना किसी मुआवजे के यह ज्ञान बांटना है, ताकि मनुष्य जाति सुखी हो सके। उस वक्त तो मैं यह बात ठीक से नहीं समझा परन्तु जल्दी ही बाद में मुझे समझ में आ गई और मैं १९६२ से अपनी योग्यता अनुसार यह सत्संग कराता आ रहा हूँ परन्तु मेरे पास इन सत्संगों का कोई रिकार्ड नहीं है। जबसे डॉ.कमला मेरी शिष्य बनी और इसको आन्तरिक नाम का अनुभव हुआ, तब से इसने इन सत्संगों का रिकार्ड आवश्यक समझा और मुझे कहा कि आप अपना अनुभव रूप में अवश्य लिखें ताकि इससे अधिक से अधिक लोग लाभ उठाएं और आगे आने वाली पीढ़ियाँ इस ज्ञान को समझ कर सुखी हो सकें।

अब मेरा उद्देश्य यह है कि लोगों को सन्तान-उत्पति का सही ज्ञान हो और धर्म के विषय में जो बहुत से भ्रम हैं, जिससे अलग-अलग

सम्प्रदाय बने हुए हैं और जो आपस में इसी धर्म के विषय में लड़ते झगड़ते आए हैं, यदि वे इस धर्म के रहस्य को अच्छी तरह समझ जाएं तो उनके ये मतभेद समाप्त हो सकते हैं और मानव-जाति का कल्याण हो सकता है। इस विषय में मेरे गुरु पण्डित फकीरचन्द जी महाराज ने धर्म का बहुत बड़ा रहस्य खोला है और वही बात अब मैं कर रहा हूँ। तो यह काम मैंने नहीं किया, यह पुस्तक मेरे से डॉ. कमला ने लिखवाई है, जिसकी यह बहुत इच्छा थी कि मैं पुस्तक लिखूं।

❒ परम सन्त कैप्टन लाल चन्द

!! राधास्वामी !!

योग्य सन्तान उत्पत्ति व जीवन का आनन्द

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वर:
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे: नम:

''गुरु पर डालूं तन-मन वार
गुरु पर जाऊं मैं बलिहार''

यह युग विज्ञान और बुध्दि का युग है । मनुष्य ने जीवन के हर क्षेत्र में बहुत उन्नति की है । जहाँ तक मनुष्य के जीवन की बात है । हम सूक्ष्मता से देखें तो आज का मानव बेचैन, चिन्तित व उदास नजर आता है । यानी इतनी उन्नति होने के बाद भी मानव जीवन सन्तुष्ट नही है । यह बात एक मजदूर से लेकर राष्ट्रपति तक के जीवन में हम देख रहे हैं । अब हम यह बात सोच सकते हैं कि इतनी उन्नति जो आज के मानव ने विज्ञान, बुद्धि तथा विचार से की है, तो इन उन्नतियों का सुख भोगने वाला मानव पहले से भी ज्यादा चिन्तित व दु:खी है । इसका कारण है कि और बातों पर जैसा वैज्ञानिकों या बुध्दिमानों से सोचा या विचार किया कि साग-सब्जी, फल, अन्न व दूध की अधिक उत्पत्ति कैसे हो ? मनुष्यों के रोगों की नई-नई

चिकित्सा के बारे में तथा आकाश, समुद्र व भूमि के साधनों की उसने नई-नई खोज की परन्तु एक बात की उससे भूल हुई है। वह यह कि वह अच्छी सन्तान कैसे उत्पन्न करे ? और दूसरा धर्म के विषय में मनुष्य ने ठीक से नहीं समझा। अतः मानव जाति अलग-अलग सम्प्रदायों ने बंट गई। इससे आपस में लड़ाई-झगडा और मतभेद होता गया। मैंने ऐसा अनुभव किया है कि मनुष्य जाति का एक ही धर्म है। परमात्मा एक ही है। परमात्मा सनातनियों का, जैनियों का, आर्यसमाजियों का, राधा-स्वामियों का, मुसलमानों का या और भी सम्प्रदाय ले लो सबका एक ही है और जहां तक आत्मा की बात है, आत्मा भी एक जैसी ही है। हिन्दू की आत्मा, मुसलमान की आत्मा और ईसाई की आत्मा में कोई अन्तर नहीं है। अब मनुष्य जाति इतनी निकट हो गई है कि वह एक गांव की तरह हो गई है। अतः मेरे मतानुसार धर्म सब मनुष्यों का एक ही है, जिसको मानवता धर्म कहो, मजहबे इन्सानियत कहो या Religion of Humanity कहो।

भूल वश मनुष्य सन्तानोत्पत्ति के विषय में अज्ञानी रहा है। उसने इस बात पर विचार ही नहीं किया कि अच्छी सन्तान कैसे उत्पन्न की जाए? जो इस लोक का जीवन-सुख, आनन्द, प्रेम तथा प्यार से जी सके। हमारे प्राचीन शास्त्रों में मनु महाराज जी ने अपने ग्रन्थ में इस बात पर प्रकाश डाला है। परन्तु वह बात बहुत पुरानी हो गई है। अब उनकी लिखी हुई पुस्तक कौन पढता है ? यह विज्ञान और बुध्दि का युग है।

यह लोक जिसमें हम जी रहे हैं संकल्प, वासना और इच्छा का

है । जैसे मनुष्य को संकल्प, विचार व चाह होते हैं, वैसा ही उसका जीवन बन जाता है, जो मैं लिख रहा हूँ, यह बात बहुत ही सूक्ष्म है यानी (लतीफ) है । अंग्रेजी में इसका भाव ऐसा कहा है ``यानी जैसा तुम बोओगे, वैसा ही काटोगे'' इसका भी वही भाव है जो मैं कहना चाहता हूँ। जैसा इन्सान विचार रखता है या सोचता है, वैसा ही हो जाता है । स्थूल रूप में हम जैसा बीज जमीन में बोते है, वैसी ही फसल काटते है । स्थूल रूप में जैसे हम विचार रखते हैं या जैसी हमारी इच्छा होती है, वैसा ही होता रहता है । इस बात का मनुष्यों को ज्ञान नहीं है कि विचार या संकल्प में कितनी शक्ति है ? हम जो भी बाहर देख रहे है या अनुभव कर रहे है, यह सब मनुष्य की इच्छा, वासना एवं संकल्प का फल है । यह लोक ही संकल्प तथा वासना का है । अब मैं आपकी सेवा में जो बताना चाहता हूँ, उस बात को समझिए ।

अच्छी सन्तान उत्पन्न कैसे करें ?

आज का मनुष्य अपनी सन्तान से सन्तुष्ट नहीं है इसका कारण हम सन्तान को सन्तान के विचार से उत्पन्न करना नहीं जानते हैं । जैसा पहले लिखा है कि यहां सब खेल ही वासना, संकल्प तथा विचार का है । स्त्री-पुरूष अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के विचार से यदि सम्भोग करते हैं तो वे जैसी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं । आज के पति-पत्नि को इस बात का ज्ञान ही नहीं है । वे तो कमांग के वशीभूत होकर अपने स्वाद के विचार से ही सम्भोग करते हैं । ऐसी अनचाही सन्तान से सुख की आशा नही की जा सकती । दूसरे, कुछ दिन तो वे चाहते ही नहीं कि सन्तान हो । वे तो विषय-भोग को ही खीर-खाण्ड समझते हैं ।

पशु-पक्षियों के भी सन्तान-उत्पत्ति के प्राकृतिक नियम है, परन्तु मनुष्य ने तो सब प्राकृतिक नियम ही समाप्त कर दिए है।

अगर पति-पत्नि अने मन में यह इच्छा या वासना रखें कि हे मालिक ! मुझे अच्छी योग्य सन्तान दो, जो मुझे सुख दे, मेरे परिवार को सुख दे, मेरे देश के लोगों को सुख दे तथा पूरी मानव जाति जो दुःखी है, उसे सुख दे। तो इस वासना, इच्छा, विचार का को मन में लेकर पति-पत्नि सम्भोग करेंगे, तब ऐसी कोई विशेष आत्मा उनके घर आयेगी, जो मानव जाति का कल्याण कर सकती है। आप जानते हैं कि साधारण आदमी तो पूरी मनुष्य जाति को सुख दे नही सकता। इसलिए उनकी इस बहुत बड़ी इच्छा के अनुसार उनके ऊपर भगवान खुद ही या तो किसी आध्यात्मिक मनुष्य का रूप लेकर गुरु, पैगम्बर बन कर या कोई बहुत बड़ा वैज्ञानिक बनकर आएगा, जो मां-बाप से लेकर मनुष्य जाति तक को सुख व आनन्द देगा। आप मेरा भाव समझ गए होंगे कि यह जितने पीर, पैगम्बर वैज्ञानिक हुए हैं, वे सब माताओं ने ही पैदा किए है। अर्थात् सन्तान पैदा करने के लिए मां-बाप की जैसी वासना या विचार होंगे, वैसी ही सन्तान उनके घर आएगी।

यदि सन्तान उत्पन्न करने से पहले यह बात नवयुवक युवतियों को ठीक समझ में आ गए तो, वे बहुत ही प्यारी और योग्य सन्तान उत्पन्न करके इस भूमि को स्वर्ग बना सकते हैं। मैने अपने जीवन में इस बात का अनुभव किया है कि मां जैसी चाहे वैसी सन्तान पैदा कर सकती है, यदि उसको इस बात का ज्ञान हो कि योग्य, आज्ञाकारी, सुख देने वाली सन्तान कैसे पैदा की जाए? मुख्य बात यहां विचार, संकल्प

तथा वासना की है।

जब बच्चा मां के गर्भ में आ जाता है तब से ही वह शिक्षा लेना शुरू कर देता है, क्योंकि मां के खून से वह बनता है। मां के जैसे भाव-विचार होंगे वैसे ही उसके भाव विचार होंगे। जब बच्चा गर्भ में हो और मां-बाप विषय भोग करते है तो वह बच्चा समय से पहले की कामी बन जाएगा। अतः बेटियां इस बात का ध्यान रखें। यदि वह ये चाहें कि हमारे बच्चे चरित्रवान बनें तो मां जो-जो काम करेगी, बच्चे में सहज वे संस्कार बन जाएंगे। जैसे मां सफाई पसन्द है और वह अपने शरीर, वस्त्र तथा स्थान को साफ करती है तो बच्चा भी सफाई पसन्द होगा। मां यदि पति व सास से झगड़ा रखेगी तो बच्चा भी झगडालू होगा। मां चोरी करेगी तो बच्चा भी मजबूर होगा चोरी करने को। मां टेलीविजन देखेगी तो उसमें जो-जो भाव वह ग्रहण करेगी वही संस्कार बच्चे में सहज से ही आते जाएंगे। अब आप सोच लो कि यह सब खेल संस्कारों का ही है। जब बेटियों के गर्भ में बच्चा हो तो जैसा वे देखेंगी, सुनेंगी और जैसे भाव-विचार उनके होंगे। जब बच्चा गर्भ में होता है और स्त्री अपने पति या सास की आज्ञा नहीं मानती है तो वह यह आशा न रखे कि उसका बेटा-बेटी उसकी आज्ञा मानेंगे। आप समझदार हैं। भाव मेरा समझ गए होंगे कि आप जैसी सन्तान चाहते हैं, बीज रूप में वैसी ही वासना लेकर सम्भोग करें। जब बच्चा मां के गर्भ में आ जाए फिर मां जो विचार, भाव रखेगी तथा जैसा-जैसा करेगी, उसके संस्कार बच्चें में होंगे और वह बड़ा होने पर और समझदार होने पर भी मजबूर होगा, वैसा ही करने के लिए। कहने का भाव यह है कि बेटियों को यदि यह सही समझ आ जाए।

कि अच्छी योग्य सन्तान हम कैसे पैदा करें तो वे देवता जैसे प्यारे, सुन्दर और सुख देने बच्चे पैदा करके इस भूमि को, जिस पर हम जी रहे है, स्वर्ग बना सकती है। देश तथा दुनियां का सुधार ये राजनैतिक नेता, धार्मिक गुरु, पीर तथा समाज सुधारक नहीं कर सकते योग्य सन्तान उत्पन्न करके माताएं ही कर सकती हैं, यदि उनको ये ज्ञान दे दिया जाए कि प्यारी, चरित्रवान, सुन्दर व सुख देने वाली सन्तान कैसे पैदा की जाए? उदाहरणार्थ जैसे अंग्रेजों के राज्य में भारतीय जनता उनकी गुलामी से बहुत दुःखी थी। गुलामी से मुक्त होने के लिए बुध्दिमान लोगों ने बहुत से यत्न किए व कुर्बानियां दी परन्तु अंग्रेज सरकार मजबूत थी और भारतीय जनता भिन्न-भिन्न समदायों में बंटी हुई थी। यानी लोगों में एकता नहीं थी इसलिए गुलामी से मुक्ति नहीं पा सके। उसके बाद माताओं ने इसी इच्छा से ऐसे वीर उत्पन्न किए जिनकी वजब से अंग्रेज सरकार को यहां से भागने के लए मजबूर होना पड़ा। वे वीर आप जानते ही हैं। जैसे लाला लाजपतराय, शहीर भगत सिंह, सुभाष चन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी इत्यादि। ये सब माताओं ने ही पैदा किए। इसी प्रकार आज के समाज की कुरीतियों को, धार्मिक अज्ञान को राजनैतिक भ्रष्टाचार को मूल रूप से समाप्त करने के लिए व एक सुन्दर व स्वर्ग जैसा जीवन बनाने के लिए माताओं को ही योग्य सन्तान उत्पन्न करने का ज्ञान दिया जाए, जिससे समाज, देश व विश्व का सुधार किया जा सके।

मैने जो यह अच्छी सन्तान उत्पन्न करने के विषय में लिखा है, ये मेरे गुरु महाराज जी ने भी अपने ज्ञान के आधार पर बताया था और वही

बात मैं स्वयं अनुभव करके अपने अनुभव के आधार पर लिख रहा है। मेरा अनुभव यह है कि मैं सत्संग कराता हूँ। मेरे सत्संग में लगभग सभी गुरुओ के विश्वासी तथा सभी धर्मो को मानने वाले सज्जन आते हैं। सत्संग सुनकर जिनको मेरे प्रति विश्वास हो जाता है, उनके अन्दर मेरा रूप प्रकट होकर उनकी सहायता करता है। किसी को खुली आंखों से मेरा रूप प्रकट होकर मदद करता है, किसी को स्वप्न में तो किसी को योग-अभ्यास में। अर्थात् जब और जहाँ उस आदमी का भयवश या प्रेमवश मन एकाग्र हो जाता है, जब वह रूप प्रकट होकर उनकी सहायता करता है। परन्तु मुझे इस बात का कुछ पता नहीं होता और न मैं कहीं जाता हूँ। यह एक आदमी की बात नहीं है, बहुत लोगों की बात है।

अब सवाल यह है कि मुझे इस मदद का पता नहीं और वे प्रेमी बहन-भाई कहते हैं कि आप आये और मेरा यह काम किया, मेरी वह मदद की। तो यह बात क्या ? देवी के भक्त कहते हैं देवी आई, राम के भक्त कहते हैं कि राम आये, गुरु भक्त कहते हैं कि गुरु जी आए। इसी तरह से सब धर्मो के मानने वालों का जहां उनका विश्वास है, वह रूप उनकी मदद करता है। असल बात, जो मेरे अनुभव में आई है, वह यह है कि हर मनुष्य के मन में बहुत बड़ी शक्ति है। जिस जीद या बात की उसको इच्छा है, मनुष्य का मन एकाग्र हो जाता है और उसका काम, जो वह चाहता है, पूरा हो जाता है। यही सिध्दान्त सिज्ञान का है। वैज्ञानिक जिस बात को जानने की इच्छा लेकर अपने मन में चिन्त करते हैं तो सोचते-सोचते जब उनका मन एकाग्र हो जाता है, तब उनको जो

वह जानना चाहते हैं, कोई नई सूझ सूझती है या उनको उसका ज्ञान हो जाता है। तो बात यह है कि यह सब खेल इस लोक में वासना, इच्छा और संकल्प का है। मैं रोज-रोज नई-नई बातें प्यारे सत्संगी भाई-बहन, बेटियों से सुनता रहता हूँ। वो मुझे सिध्दि-शक्ति वाला महात्मा मानते हैं। परन्तु असलियत यह है कि शक्ति उनके मन मे है, उनकी इच्छा, वासना, संकल्प तथा विश्वास में है। मैं जानता हूँ कि मुझ में कोई शक्ति नहीं है। यह तो वह बात हुई कि `अहमद की टोपी मोहम्मद के सिर' यानी शक्ति मनुष्य के मन में है और अज्ञान के कारण वह उसे देखता, गुरु, पीर, अवतार या पैगम्बर में समझता है। इस अनुभव के आधार पर मैंने यह बात आपको बताई है कि आप जैसी सन्तान चाहते हैं, वैसी ही पैदा कर सकते है।

यह बात मैं क्यों लिख रहा हूँ? जब मैं सत्संग कराने बाहर जाता हूँ तो मेरे प्रेमी भाई, बहन, बेटियां अपनी सन्तान की शिकायत करते हैं कि उनकी सन्तान कहना नहीं मानती, वे उनके साथ झगड़ा करते हैं या वे समय से पहले कामी या चरित्रहीन हो जाते हैं। मेरे पास उस समय इतना वक्त या समय नहीं होता कि मैं उनको यह बात समझा सकूं कि भाई, इसमें बच्चे का कोई दोष नहीं है। सन्तान उत्पत्ति के समय जैसे आपके विचार थे और जब बच्चा गर्भ में था, उस समय मां का जैसा व्यवहार व आचरण था, बच्चे का व्यवहार व आचरण वैसा ही होगा।

उसके बाद बच्चा जैसी संगत करेगा, जैसे संस्कार उसने पढ़ने से, देखने से, सुनने से ग्रहण किए हैं, वैसा ही करने को वह मजबूर है। जैसे आजकल वे टेलिविजन देखते हैं। वहां से वे जो संस्कार ग्रहण

करते हैं, वैसा ही उनका जीवन भी बन जाता है। इस विषय में बहुत से पहले के उदाहरण हैं कि मां ने जैसा चाहा वैसी ही सन्तान उत्पन्न की है। परन्तु आज के इस वैज्ञानिक और बौध्दिक युग में आदमी हर बात का सबूत चाहता है। अकबर महान की बात कहते है कि जब वह मां के गर्भ में था, तब शेरशाह पूरी ने हुमायूं को जंगल में भगा दिया था। एक दिन अकबर महान की माता जमीन पर कोई नक्शा बना रही थी। हुमायूं ने पूछा कि बेगम, यह क्या कर रही हो ? तब वह बोली मैं एक नक्शा बना रही हूँ। मेरा जो पुत्र पैदा होगा, वह इतने बड़े राज्य का बादशाह होगा। इस तरह के बहुत से उदाहरण इतिहास या शास्त्रों में मिलते हैं। परन्तु बात पुरानी हो गई है और आज का आदमी हर बात का प्रमाण चाहता है।

इस प्रकार के उदाहरण मेरे खुद के अनुभव में और भी है, परन्तु मैं अपने गुरु जी का बताया हुआ उदाहरण देना ही ठीक समझता हूँ। मेरे गुरु जी पण्डित फकीरचन्द जी महाराज कहते थे कि उनके पिता जी रेलवे पुलिस में एक सिपाही थे। उनकी (गुरुजी की) माता जी जब वह (गुरु जी) बड़े हुए और पढ़ते थे तब उनको कहती थी कि बेटा, जब रेलगाड़ी आती थी, तब उसमें गार्ड, स्टेशन मास्टर हरी झण्डियां लेकर घूमते थे, तो मैं सोचती थी कि ``मेरे भी कोई ऐसी सन्तान हो जो इनकी तरह हरी झण्डियां लेकर रेल में घूमें''। जब मेरे गुरु जी बड़े हुए तब वह स्टेशन मास्टर हुए और उनका छोटा भाई ट्रैफिक चीफ मैनेजर हुआ और रेल में खूब घेमा तथा अपनी माता जी को भी साथ घुमाया। यानी मां की जैसी वासना या इच्छा थी, सन्तान पैदा होने से

पहले, वैसा ही हुआ। तो यह बात स्पष्ट है कि मां जैसा चाहती है, वैसी ही सन्तान हो जाती है।

आगे बात है शक्ल या रूप की। इस विषय में ऐसा है कि मां माहवारी नहा कर जैसी शक्ल या चित्र देखती है, तो वह शक्ल उसके मन में बन जाती है। यदि उस समय या उस महीने में उसको गर्भ रहेगा तो वह शक्ल या रूप बच्चे का होगा। इसी कारण हु गृहस्थी अपने घरों में सुन्दर-सुन्दर चित्र बच्चों के या अपने गुरु-पीर-पैगम्बरों के देखते है। उदाहरणार्थ कुछ साल पहले अखबारों में एक समाचार निकला था कि एक अंग्रेज जोड़े के एक बच्चा जन्मा जो हब्शी (अफ्रीका के निवासी) की शक्ल का था। उस अंग्रेज पुरूष ने अदालत में दावा कर दिया कि यह बच्चा मेरा नहीं है। अखिर खून की जांच की गई तो खून उस बच्चे का उस पुरूष के साथ मेल कर गया। जज़ जिसने फैसला देना था, मुसीबत में पड़ गया। जज समझदार था उसने कहा कि मैं आप का घर देखना चाहता हूँ। जब जज उस घर में गया तो उसने देखा कि उस अंग्रेज की पत्नी की चारपाई के सामने दरवाजे से उपर एक हब्सी खिलाड़ी की फोटो टंगी हुई थी। जज ने पूछा कि यह यहां क्यों लगा रखी है ? उस अंग्रेज औरत ने कहा कि वह बहुत अच्छा खिलाडी है और वह उसे बहुत अच्छा लगता है।

दूसरा उदाहरण मेरे गुरु महाराज का है। उनके सब बच्चे गोरे रंग के हैं। उनका एक लड़का जो इंजिनियर है, सांवले रेग का है। वह कहते है कि एक दिन उन्होंने रेल में कांटे वाले नौकर को चाबी लाने के लिए अपने घर भेजा। ``गुरु माता'' यानी उसकी पत्नी महावारी

नहाकर स्नानघर से निकली और उन्होंने उस काटें वाले को देखा जो सांवले रंग का था। गुरु जी का कहना था कि इस कारण उनके लड़के का रंग सांवला हुआ। बात को समझ लें, मैं आपको यह बताना चाहता हूँ कि माताएँ सुन्दर और योग्य सन्तान अपनी वासना व विचारानुसार उत्पन्न कर सकती है।

अगली बात इस विषय में यह है कि स्त्री-पुरूष सन्तान पैदा करने के लिए सम्भोग करें, स्वाद के लिए न करें। ऐसा करने से समय आने पर मरना तो होगा, परन्तु वे बूढ़े होने पर भी रोगी नही होंगे। बात यह है कि ब्रह्मचर्य ही जीवन है। यदि एक दिन का भोजन ठीक हजम हो जाता है तो किसी खास आयु तक एक बुन्द खून की बनती है। चालीस बुन्द खून की बन जाती है, तब एक बुन्द उर्जा (शक्ति) बनती है। चालीस बून्द उर्जा की बन जाती है, तब एक बुन्द वीर्य की बनती है, जिससे आदमी पैदा होता है। यह वीर्य ही मनुष्य में विशेष शक्ति या जीवन है। जो आदमी इस वीर्य को अपने स्वाद के लिए नष्ट करता है, उसका दिमाग खाली हो जाता है और उसमें कमजोरी आ जाती है, उसे गुस्सा ज्यादा आता है व स्वभाव से चिड़चिड़ा हो जाता है। यानी जीवन का रस उसे नहीं आता और ऐसे कमजोर आदमी को कई तरह की बीमारियां पकड़ लेती है। उसके डर, भय चिन्ता आदि अधिक बढ़ते जाते है। मतलब यह है कि जीने का आनन्द, खुशी, उमंग व सुख उससे दूर भाग जाते है। यह बात पति-पत्नि दोनों के समझने की है और अपने मन पर संयम रखने की है। यदि कोई मनुष्य जीवन का आनन्द, रस या खुशी लेना चाहे तो प्राकृतिक जीवन जीने का तरीका अपना ले। बात कुछ

कठिन सी लगती है, क्योंकि आजकल तो आदमी ने यह समझ रखा है कि जो भी स्वाद और खुशी है वह केवल विषय - भोग में ही है। यदि यह नही होगा तो और क्या खुशी है ? यह बहुत ही गलत संस्कार मनुष्य के और भी बहुत ही गलत संस्कार मनुष्य के मन पर घर कर गया है। मनुष्य के शारीरिक और मानसिक दुःखों के और भी बहुत से कारण है, परन्तु सबसे बड़ा कारण वीर्य को स्वाद के लिए नष्ट करने का है।

मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक खुशी, प्रसन्नता व आत्मिक आनन्द केवल मानसिक और शारीरिक ब्रह्मचर्य ठीक रहने से होगा। यदि मनुष्य शारीरिक विषय भोग न करें, परन्तु मानसिक रूप से लग्न चित्र या वैसे ही स्त्री-पुरूष एक दूसरे को देखकर कामांग का आनन्द लेते हो तो उनका ब्रह्मचर्य गिर जाएगा और वीर्य अपनी जगह छोडकर स्वप्नदोष के रूप में या किसी दूसरे ढंग से निकल जाएगा। आज के मनुष्य के जितने ये शारीरिक, मानसिक दुःख व रोग हैं उनका सबसे बड़ा कारण ब्रह्मचर्य का गिरना है। मेरा भाव यह है कि काम बहुत पवित्र है, क्योंकि उससे मनुष्य अपने जैसा मनुष्य उत्पन्न करता है। परन्तु यही काम यदि स्वाद के लिए भोगा जाता है, तो तरह-तरह की शिकायते, जो आज के मानव को हैं जैसे जीवन में निराशा, अप्रसन्नता, असन्तुष्टि, फीकापन या खालीपन वह महसूस करता रहेगा।

कहने का भाव यह है कि हमारा मनुष्य जीवन पति-पत्नि के मेल से ही शुरू होता है। यदि उनको प्रेम खुशी से जीने का ढंग मालूम हो जाए और वे आपस में बहुत ही प्रेम से रहें, मीठा बोलें, एक दूसरे की सेवा करें

तो उनका गृहस्थ जीवन प्यार का होगा और उनकी जो प्रेम-प्यार से सन्तान उत्पन्न होगी, उनको माता-पिता से सुन्दर व प्रेम के संस्कार मिलेंगे। साथ पति-पत्नि में आपस में यह प्रेम तब ही रहेगा जब उनको यह ज्ञान और समझ हो कि उन्हें क्या परहेज रखना है ? तो पहले हमने ये समझा कि कैसी वासना, इच्छा या विचार रखकर प्यारी, सुन्दर, सुख देने वाली, आज्ञाकारी सन्तान उत्पन्न करें। फिर पति-पत्नि जब बच्चा गर्भ में हो, कैस विचार रखें व क्या परहेज रखें ? फिर घर का, मां-बाप का आपस में रहन-सहन और व्यवहार कैसा हो, जिससे बच्चों को प्यारे व मीठे संस्कार मिले, यह जीवन का आधार है। यह संस्कार पहले घर से शुरू हो, तब बाहर के संस्कारों को ध्यान रखा जाए कि हमारे लड़के-लड़की की संगत कैसी है ? फिर उनके टेलिविजन से जो संस्कार बनते हैं, उस पर ध्यान दिया जाए कि पढ़ने वाले बच्चे यदि टेलिविजन पर ज्यादा ध्यान देंगे और उनका ज्यादा ध्यान नाच-गानों पर है, तो वे समय से पहले कामी बन जाएंगे। जैसे कबीर साहब ने कहा है –

दया राख धर्म को पाले, जग से रहे उदासी
सत नाम ताहि को मिल सी, कहे कबीर अविनाशी ।।

इसका भाव यह है कि मनुष्य को गृहस्थ में दया रखने का सुन्दर अवसर मिलता है। जैसे गृहस्थी के बच्चे, छोटे है और वे गलती करते हैं तो उनको उनके साथ दया का व्यवहार करना चाहिए। क्रोध में आकर मार-पीट या कठोर शब्द नहीं करने चाहिए, जिससे उनका मन दु:खे। दूसरा, गृहस्थी की पत्नी है या घर में बूढ़े मां-बाप हैं, जो उस पर निर्भर

करते है तो उनपर भी उनकी गलतियों पर दया की जाए और कोई बुरा व्यवहार न किया जाए । लेकिन ज्यादातर देखने में यह आता है कि मनुष्य को जब क्रोध आता है तो वे अपने बच्चों को पीटते हैं, पत्नी पर हाथ उठाते हैं और बूढ़े मां-बाप को कठोर शब्द कहते हैं, जिससे उनका मन दुखता है और उनको उनसे दुराशीश मिलती है, जिसके कारण गृहस्थ में तरह-तरह की विपत्तिया आती है तथा उसे शारीरिक रोग, आर्थिक संकट, मानसिक चिन्ता, डर, भय या और अनेक परेशानियों का सामना करना पडता है इसके पीछे भी वही भाव है कि अपने ब्रह्मचर्य को कायम रखा जाये और सुन्दर संस्कार और सुन्दर व्यवहार का बर्ताव किया जाये । जो व्यवहार हम अपने साथ नही चाहते, वो परिवार के साथ न किया जाए । इसी से गृहस्थ खुशहाल रहेगा । यह मेरा अपना अनुभव है और मैं इसी तरह से जीवन जिया हूँ और इसी बात को पहले महापुरूषों ने भी कहा हैं –

''जहां सुमति तहां सम्पति नाना ।

जहां कुमति तहां विपत्ति निधाना ।।

अर्थात् जिस घर में आपस में प्यार है, किसी प्रकार का मन-मुटाव नहीं है और वे हर कार्य में एक राय से काम करते हैं तो उस घर में किसी बात का अभाव नहीं रहेगा और जिस घर में पति-पत्नि, मां-बाप और सन्तान का आपस में मतभेद है तो वो एक-दूसरे का भला नहीं चाहेंगे और उस घर में तरह-तरह की समस्याएं व परेशानियां आती रहेंगी ।

कहने का भाव यह है कि सन्तान पैदा करना ही मां-बाप का काम नहीं है । उसका सुन्दर संस्कार देना और चरित्रवान बनाना उनका

कर्त्तव्य है । परन्तु यदि मा-बाप खुद ही कामी है और टेलिविजन के नाच, गाना, तमाशा देखने के रसिए है, तब फिर सन्तान का क्या दोष है? मैंने यही एक बात समझाने की शुरू से कोशिश का क्या दोष है? मैने यही एक बात एक बात समझाने की शुरू से कोशिश की है कि यह लोक वासना या संकल्प का है। अपनी वासना अनुसार ही वह यहां पर स्वर्ग जैसा जीवन जी सकता है। अतः आप जो भी सच्चे मन से इच्छा या चाह करोगे तो वैसा ही जीवन बन जाएगा।

मनुष्य का जीवन एक प्राकृतिक (Radio Station) रेडियो स्टेशन है। जैसे उसके अच्छे या बुरे भाव-विचार है वह उनको बाहर भेजता रहता है। जैसा वह विचार करता है, उसकी धारा बाहर बहती रहती है। इसको विज्ञान ने कहा है। जैसे डाक्टर बीमारियों का इलाज करते हैं परन्तु बीमारियों को निमन्त्रण भी डाक्टर सामूहिक रूप से देते रहते है, क्योंकि उनका पेशा ही ऐसा है कि बीमार आये, और उनका धन्धा चलता रहे। यह बात भी वही वासना और इच्छा वाली है, परन्तु बात बहुत सूक्ष्म है, आम आदमी के यह फिलोस्फी (दर्शन) समझ में आने वाली नही है। जैसे डाक्टर शरीर की बॉयोलॉजी या संरचना की पढ़ाई पढ़ता है। जब कोई बीमार आता है तब वह जांच करके जहां और जिस कारण शरीर में असमता बन गई है, जिससे आदमी बीमार है, उसकी दवा देता है और मनुष्य, शरीर की समता ठीक होने पर स्वस्थ हो जाता है, परन्तु मन और आत्मा की असमता का डॉक्टर को ज्ञान नहीं होता है।

अब मैं आपको मन और आत्मा के विषय में लिख रहा हूँ कि हर आदमी अच्छे या बुरे जो भी उसके भाव हैं, हर समय उन विचारों की

धारा बाहर भेजता रहता है, जो आकाश में कायम रहते हैं। इसलिए यह कहा जाता है कि हम मन, वचन व कर्म से शुध्द व पवित्र रहें। मनुष्य को इस बात का ज्ञान नहीं है। इसलिए वह अपने विचारों को शुध्द नहीं रख सकता। खेल इस लोक में सब वासना, इच्छा, तमन्ना व संकल्प का है। यदि यह बात समझ में आ जाए और मनुष्य क्रियात्मक या अमली तौर पर अपने विचारों को पवित्र नेक या अच्छे बना ले तो उसका जीवन अति खुशी, प्रसन्नता व शान्ति का बन सकता है। इसके लिए हमारे महापुरूषों ने एक ही बात कही है कि हे मानव ! यदि तू यहां अपना जीवन सुख व शान्ति का चाहता है तो सुन्दर विचार रखा कर। यही `शिव संकल्पमस्तु' वेद मन्त्र है। कहने का भाव यह है कि शुभ और अशुभ सब हमारे विचारों का फल है। इसलिए हमें अपने विचार आशावादी विचार भूल कर भी न रखे जायें क्योंकि जैसे विचार हम रखेंगे, वैसा ही हो जायेगा। यानी आशा ही जीवन है और निराशा ही मृत्यु। अतः हमेशा आशावादी रहें। विचार यह हो कि हम हर काम का यत्न करें और जब उसका परिणाम आए और वह हमारे मन के अनुकूल न हो तो उस समय यह भाव बना रहे कि इसमें ही मेरी कोई भलाई है या ऐसा सोचे कि भगवान जो करता है, उसमें कुछ भलाई ही है। हमको कर्म फिलोस्फी और संकल्प फिलोस्फी का ज्ञान नहीं है, तभी हम सुखी और दुखी होते रहते है। बात यह है कि हमारे ही शुभ कर्मों का फल सुख और अशुभ कर्मो का फल दुःख होता है। अर्थात् हम जो विचार, भाव मन में सोचते रहते है, कर्म के बीज बोता रहता है। यदि उसकी यह समझ आ जाये कि मन से हमेशा सुन्दर विचार रखे जाये, किसी का बुरा न किया जाए और मुंह से ऐसी बात न बोली जाए जिससे किसी का

मन दुखे और शरीर से कोई ऐसा काम न किया जाए जिससे किसी का दु:ख हो तो वह मनुष्य हमेशा शुभ कार्य ही करेगा और उसको इसका फल हमेशा अच्छा ही मिलेगा। जैसा राधास्वामी वाणी में कहा है –

''कर्म जो-जो करेगा तू, वही फिर भोगना भरना''

अर्थात् हम मन, वचन और कर्म से अपने परिवार या जिनसे हमारा सम्बन्ध है, उनको देते तो दुख है, और चाहते हैं सुख-शान्ति। यानी बोते तो हैं बबूल (कांटे) और चाहते हैं आम। जो मनुष्य जो कुछ बोता है, वह वही तो पाएगा। वास्तव में मनुष्य को यह ज्ञान नही होता कि ये दु:ख-सुख, लाभ-हानि क्या है और ये कहां से आते हैं?

मैंने पहले भी अच्छी, सुख देने वाली, आज्ञाकारी प्यारी व सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने में इच्छा, संकल्प या वासना की बात कही है और यही बात कर्म फिलोस्फी में है। जैसे यदि किसी का भाग्य पहले ठीक न हो तो वह अपने विचार, संकल्प या इच्छा से उसे अब बना सकता है। जैसे यदि पहले भाग्य में धन, सन्तान, मकान और सांसारिक सुख न लिखा हो तो अब उमंग, आस-विश्वास रखकर जो अभाव जीवन में महसूस होता है, उसे मन में रखकर परमात्मा से मांग करे तथा खूब मन लगाकर काम करें तो जो भी आप चाहते हैं, वह वस्तु मिल सकती है। ऐसा मेरा अनुभव है। अर्थात् जब आप यह समझते है कि यह वस्तु मेरे भाग्य में नहीं लिखी है तो उसे अब वासना, इच्छा या संकल्प से लिखवा लो। जैसे कहा है –

सांई के दरबार में, कमी काहू की नही।

बन्छा मौज न पावही, चूक चाकरी माही॥

एक अन्य स्थान पर कहा है –

फैज कर दर है खुला बन्द नहीं हरगिज ।

शर्त यह है कोई मांगने सायल आए ।।

यहां पर उपर्युक्त दोहे में जो 'चाकरी' शब्द लिखा है,यह इच्छा, चाह या है और ``मांगने कोई सायल'' यह लिखा है, इसका भाव प्रार्थी (मांगने वाला) याचक से है । यह बात रहस्य में महापुरूषों ने कही है । परन्तु आज के इस वैज्ञानिक व बौद्धिक युग में आदमी इन पहेलियों को समझ नहीं सकता । अतः मैंने अपने टूटे-फूटे शब्दों में यह वासना, इच्छा या संकल्प की बात जैसा मैंने अनुभव किया या समझा, लिखा है । मैंने अपने अन्दर सहज में दुनिया के जीवन का आनन्द, रस व सुख लेते हुए एक बहुत ही अच्छा जीवन जिया है और अब अस्सी साल की आयु में भी हर तरह से सन्तुष्ट जीवन जी रहा हूँ ।

मैंने अपने जीवन के अनुभव के आधार पर जो पहले लिखा है कि जगह-जगह प्यारे सत्संगी मेरे रूप को प्रकट करके जीवन में जैसी जिसकी आवश्यकता होती है, उसे पूरा करते रहते हैं और मुझे कुछ मालूम नहीं होता तो वह कौन है ? जो उनके अन्दर प्रकट होकर मेरे रूप में उनकी मदद करता है । मैंने इसे प्रमाणित कर दिया है कि यह उनका मन है, उनका विश्वास और आस है । उनका खुद का ही मन मेरा रूप धारण करके उनकी मदद करता है क्योंकि जब मैं कही बाहर नहीं जाता तो कौन गुरु, कौन देवी, कौन देवता और कौन भूत-प्रेत आता है ? यह आज तक एक बहुत बड़ा रहस्य बना हुआ है और इस अज्ञान और भ्रम में आकर मनुष्य जाति अलग-अलग सम्प्रदायों में बंटकर आपस

में लड़ती-झगड़ती है। सब मनुष्यों का एक ही धर्म है। सब मनुष्य एक ही परमात्मा के बच्चे हैं। भ्रम और अज्ञान से मानव-जाति अलग-अलग बंट गई है।

यह जो बात मैंने समझी है, यदि इसी बात को यह सब धर्म का काम करने वाले महापुरूष साफ-साफ अपने सत्संगो में मनुष्यों को बता दे तो मनुष्य की धर्म के विषय में भटकन और भ्रम दूर हो सकते हैं और मानव जाति में जो धर्म के नाम पर आपस में भेद या भिन्नता है, यह दूर हो सकती है। जो मैंने अपने जीवन में धर्म के विषय में जो समझा या अनुभव किया, उसे टूटे-फूटे शब्दों में आपको लिख दिया है कि धर्म मनुष्य के विश्वास का खेल है। जहा जिसका विश्वास होता है, वहीं संस्कार शक्ल या रूप बनाकर प्रकट होते है, बाहर से न राम, न कृष्ण, न देवी-देवता और न अन्य धर्मो के पैगम्बर, जिनमें लोगों का विश्वास है, वे आते है। हे मानव तेरा ही मन वह रूप बनाकर तेरी मदद करता है। यह रहस्य है, जिसको आज तक किसी ने स्पष्ट नहीं बताया और न ही अब ये गुरु-पीर बता रहे हैं। आज के वैज्ञानिक युग में, लोगों को हर बात का प्रमाण चाहिए। पुरानी कथाओं में इनका विश्वास नहीं है। यही अनुभव धर्म के विषय में मेरे गुरु महाराज जी का है। उनका साहित्य इस सच्चाई से ओत-प्रोत है।

अब रही बात दूसरे महापुरुषों की जिन्होंने अब बहुत बड़े-बड़े आश्रम बना रखे हैं और बहुत जनता को अपने पीछे लगा रखा है, वे अपने सत्संग में यह सच्चाई नहीं बताते कि वे किसी के अन्दर प्रकट होकर उनकी मदद नहीं करते। यह भक्त का मन ही है जो गुरु का रूप

बनाकर उनकी मदद करता है। इस विषय में मैं यह समझा हूँ कि या तो हो सकता है कि उनको इस विषय का ज्ञान ही न हो या इनके कोई किसी जन्म के शुभ कर्म हैं जो अब महात्मा बन कर पूजे जा रहे है या फिर वे यदि इस विषय के अनुभवी हैं, तब वे बात तो जानते है कि वे बाहर किसी के अन्दर प्रकट नहीं होते परन्तु यह सच्चाई अपनी संगत को नही बताते, क्योंकि इससे उनका जो मान-सम्मान हो रहा है या धन आ रहा है, वह इतना नहीं आएगा। अर्थात् जब मनुष्य को यह मालूम हो जाएगा कि यह जो मिलता है या चमत्कार होते हैं, यह मेरे ही आस-विश्वास का फल है, तब वे इतना धन गुरु-पीरों को नहीं देंगे, जितना अन्धविश्वास या अज्ञानता में देते हैं और न आश्रमों में इतनी भीड़ होगी। कहने का भाव यह है कि गुरुओं के द्वारा यह सच्चाई बता दिए जाने पर कि यह सब आपके ही विश्वास का फल है और गुरु या भगवान जिसको मन्दिर, मस्जिद, चर्च, तीर्थ-धाम या आश्रमों में बाहर खोज रहे हो, वह तो आपके ही अंग-संग है। इससे एक बात तो यह होगी कि आश्रमों में भीड़ कम हो जाएगी और दूसरी बात यह होगी कि जो भक्त निज धाम जाना चाहता है, मोक्ष या निर्वाण चाहता है, वह गुरु या इष्ट के रूप में नहीं उलझा रहेगा, बल्कि आगे खोज करेगा। जब वह सब विचार, शक्ल, रंग-रूप छोड़ देगा तो आगे प्रकाश और शब्द का रास्ता खुल जाएगा, जो उसको अन्त में निज धाम या निर्वाण पद में ले जाएगा। यहां मेरा यह भाव नहीं है कि आश्रम गलत है। जैसे पढ़ाने के लिए स्कूल, कॉलेज जरूरी है, ऐसे ही ज्ञान-विज्ञान पढ़ाने के केन्द्र जरूरी हैं, परन्तु यदि कॉलिज स्कूल भर्ती ही करते जाएं और वे बच्चों को प्रमाण पत्र न दें तथा पूरी आयु ही उन बच्चों को स्कूल, कॉलेज से बाहर जाने

की अनुमति न दें तो उस पढ़ाई का क्या लाभ होगा ? कहने का भाव यह है कि गुरु-पीर सत्संग कराकर परम शान्ति और परम आनन्द को प्राप्त कराने वाला योग, उसका ढंग, तरीका सिखाकर यह भेद बताकर कि भाई, आपके अन्दर ही सब कुछ है और इसको खुद अपनी रोजी-रोटी कमाते हुए अनुभव कर लो, तब तो ठीक है, परन्तु उसको पूरी आयु के लिए आश्रमों के साथ ही बांध लेना ठीक नहीं है। साबुन इसलिए लगाते हैं कि साबुन भी धुल जाए और मैल भी उतर जाए। साबुन लगा ही रहे, यह बात ठीक नही लगती। गुरु इसलिए बनाये कि बाहर की सिध्दियां भी मिल जाएं तथा उनके द्वारा बताए गए ज्ञान से हम अन्दर के रूप को छोड़कर निज धाम तक ले जाने वाले शब्द व प्रकाश का अनुभव कर लें। कोई यह न समझे कि मैं गुरु और आश्रमों के विरूध्द हूँ। बिना गुरु के ज्ञान कहां से मिलेगा और बिना आश्रम के गुरु कहां बैठ कर ज्ञान या सत्संग देगा ?

आजकल डाक्टरों, मास्टरों तथा गुरुओं की बहुत ही शिकायत है कि ये सब जनसेवा न करके अपने-अपने स्वार्थवंश कार्य कर रहे हैं, और बात भी ठीक है। कुछ कमजोरियां होती है, तभी चर्चा चलती है। परन्तु भाई, जब कोई बीमारी या शरीर का रोग होता है तो इलाज तो डाक्टर ही करेगा। बच्चे जब पढ़ाने हैं, तो मास्टर ही पढ़ाएंगे और इसी तरह जब जीव अशान्त होगा और उससे छुटकारा चाहता है तो इस ज्ञान के लिए गुरुओं से ही यह वस्तु मिलेगी। मनुष्य तो मनुष्य ही है चाहे वह कुछ भी बनकर यहां खेल खेलने आया है। चाहे वह बड़ा हो या छोटा हो, चाहे मजदूर या राष्ट्रपति, सब में कुछ न कुछ कमी होती है। अपने-

अपने दर्जे पर समझ आने पर अपना सुधार करता है। आज दुनिया एक गांव की तरह बन गई है। आपने कुछ साल पहले अमेरिका के राष्ट्रपति की कहानी अखबारों में पढ़ी थी। दूसरे धर्म के आचार्य राजस्थान के एक जैन मुनि की कहानी भी आपने अखबारों में पढ़ी है और इसी तरह रोज-रोज नई-नई बड़े आदमियों की कमजोरी पढ़ने, देखने व सुनने में आती रहती है। तो क्या यह दुनिया ठीक नहीं हैं? नहीं, यह बात नहीं है और यह कोई नई बात नहीं है। हम सभ्यता में आ गए हैं, इसलिए ऐसी बातें अच्छी नहीं लगती। थोड़ा पीछे भगवान श्री कृष्ण महाराज का चरित्र बचपन से लेकर अन्त तक देखें। यह सब प्राकृतिक खेल है। हम यहां खेल खेलने या लीला करने आए हैं। यह एक बड़ा नाटक है।

हमने परिवार में जो पार्ट ले रखा है, मां, बाप, भाई-बहन, पति-पत्नि या बेटा-बेटी का, तो उस पार्ट में अपनी एक्टिंग (कर्त्तव्य) ठीक, सुन्दर तरीके से, प्यारा लगने वाला करें। बस इतनी सी बात है। परन्तु यह भी समझ लें कि जिसकी जैसी प्रकृति है, वह वैसा करने को मजबूर है। यह बात समझना ज्ञान है। फिर कोई शिकायत नहीं होगी। तो मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य यह है कि वह आत्मज्ञान यानी अपना खुद का ज्ञान प्राप्त करे कि वह क्या है? कहां से आया है तथा कहां जाएगा? यह ज्ञान सबसे ऊंचा और मुख्य है और भी इस विषय में बहुत कुछ कहना चाहता था, परन्तु पाठ लम्बा हो जाएगा और आज के आदमी के पास इतना समय नहीं है कि वह ऐसी बातें पढ़ने में इतना समय दे सके।

2

गुरु की महिमा

मेरे सामने अपने जीवन की घटना है। मैं १९५६ में पण्डित फकीरचन्द जी महाराज के घर होशियारपुर आध्यात्मिक संस्कारों के प्रभाव से आया था। दूसरों से एक भक्त के बारे में योग-अभ्यास की बातें सुनने से मेरी यह इच्छा बन गई कि मैं भी भक्त जो समाधि लगा कर भजन करते हैं, करूं और इस भजन का रस लूं। उस समय मैं सेना में सूबेदार के पद पर था और मैं दूसरे युध्द में सेना में नौकर हुआ था और मुझे जल्दी ही यह पद मिल गया था। अतः जीवन में मुझे कोई अभाव महसूस नहीं हुआ। मैं सन्तुष्ट था।

मुझे इस आध्यात्मिक ज्ञान की भी अनुभूति पहले ही दिन परम दयाल पण्डित फकीर चन्द जी महाराज की कृपा से कुछ थोड़े से समय में हो गई और मेरे गुरु जी ने मुझे यह सन्तुष्टि दी कि यही भजन है और इसी को नाम, या राम नाम या राधास्वामी कहते है। तुम सहज में इसकी, जब समय हो, अनुभूति करते रहना। समय आने पर उस मंजिल पर पहुंच जाओगे, जहां पहुंचने के लिए यह महात्मा बहुत से यत्न करते है और त्याग-तप करते हैं।

प्यारे पाठकों, मैं १९५६ से इसका अनुभव करते-करते अब अस्सी साल का हो गया हूँ। ३६ साल सेना की नौकरी की, देश-विदेशों में गया। दूसरे युध्द से लेकर १९७१ तक जितने भी छोटे-बड़े युध्द हुए

उनमें भाग लिया। मुझे अपने जीवन में आज तक किसी तरह का कोई कष्ट या अभाव नहीं हुआ। इस राम नाम, सतनाम या निजनाम के सहारे जीवन बहुत ही सहज, उमंग, प्रसन्नता व आनन्द से जीता आ रहा हूँ। मेरा अनुभव हमारे धर्म-कर्म का ज्ञान देने वाले पहले महापुरुषों से कुछ भिन्न है। उन्होंने अधिकतर इस लोक के जीवन को दुःखमय बताया है और इस लोक को जिसमें हम जी रहे है, केवल दुःख का माना है। मैंने जो अनुभव किया है और समझा है, वह यह है कि यह लोक भी भगवान ने या परम तत्व ने बनाया है। जो भगवान बनाता है, वह सब कुछ अच्छा व सुन्दर ही बनाता है। ये जो दुःख-सुख है, ये तो मनुष्य के अपनी की कर्म का फल है। मैने गुरु कृपा से बहुत ही खुश, आनन्द, उमंग व सुख का जीवन जिया है। अब आगे की कुछ कह नहीं सकता हूँ कि क्या गुजरे ? धर्म में जिस स्वर्ग की चर्चा है, उस स्वर्ग को मैं गुरु कृपा से यहीं अनुभव कर रहा हूँ। स्वर्ग नाम सुख का है, नरक नाम दुख का। ये सुख-दुःख मनुष्य के कर्म से बनते हैं। कर्म-वासना, इच्छा व विचारों से बनते हैं। ये विचार मनुष्य के देखने, सुनने, पढ़ने से व मां के गर्भ से लेकर बड़ा होने तक बाहर से जैसी-जैसी छाप उसके मन पर पड़ती है, जिनको वह सच समझता है, और यही सब विचार कर्म बन जाते है तथा समय आने पर बाहर से, ग्रह की रोशनी या प्रकाश मन पर पड़ने से ये संस्कार प्रकट होते रहते हैं और मनुष्य जागत हुए, स्वप्न में या साधन-अभ्यास में इनको सच मानता है और दुखी-सुखी होता रहता है। यह एक बहुत बड़ा जाल है और इसी को ही माया कहा है और जो ये रंग रूप प्रकट होते हैं, उसको छाया कहा है। यह सब अच्छे या बुरे विचारों का प्रभाव है।

गुरु कृपा से मैंने अपने जीवन में शुरू से ही यह रहस्य समझ लिया और इसका अनुभव भी सहज में ही हो गया और इस सहज साधन से मेरे मन व शरीर की समता बनी रही, जिससे संसार के सब काम करते हुए, जीवन का सुख, आनन्द, रस व प्रसन्नता लेते हुए परम शान्ति व परम आनन्द वाले साधन को सहज ही हर समय और हर हालत में करता रहा और इससे हर समय शरीर, मन, वचन व कर्म से निश्चयात्मक बुध्दि बनी रही। कभी-कभी इस हाल से गिरावट भी आती रही और अब भी कभी-कभी कुछ समय के लिए जब बाहर के प्रभाव या शरीर की असमता के कारण गिरावट आ जाती है, तब गिरता रहता हूँ, परन्तु गुरु महाराज जी की कृपा से सत्संग मुझे बहुत ऊंचे मिले हुए हैं, और साधन सहज ही गुरु से उस सार शब्द का मिला हुआ है, अतः जल्दी ही होश में आकर फिर उसी हालत में आ जाता हूँ।

जब मैं उस नाम को किसी कारण से भूल जाता हूँ, विचारों में नीचे आ जाता हूँ, मुझे इस बात का कोई दुःख या अफसोस नहीं होता, क्योंकि मैं भेद या रहस्य जानता हूँ कि यह सब उसकी यानी मालिक या गुरु की मौज का खेल है। आदमी के वश की बात नहीं है। जैसा गुरु वाणी में कहा है –

करे करावे आप ही आप ।

मानुष के नहीं कुछ भी हाथ ।।

अर्थात जहां मनुष्य अपनी ही वासना, इच्छा या विचारों का फल अच्छे या बुरे जैसा वह संकल्प रखता है, भोगता है, वहां तक ठीक है। जहां उसकी बुध्दि, समझ काम नही करती कि यह कैसे हुआ ? वहां वह

समर्पण या कर देता है, यानी परमात्मा या भगवान की इच्छा या वासना कह देता है । यह बहुत बड़ा रहस्य है । हम कह सकते हैं कि भगवान की लीला मनुष्य नहीं जान सकता है । जिसने जितना खोज करके समझा, उतना-उतना अपने ही शब्दों में सबने बताने का यत्न किया है, यह मेरा विचार या समझ हैं ।

हमारे ऋषि मुनियों ने जैसा-जैसा अपना अनुभव किया या जिस विषय की खोज की, वह उन्होंने लिखा है । इनकी खोज का परिणाम हमारे पास है, परन्तु अब जो महापुरूषों ने बहुत बड़े-बड़े आश्रम बना कर बहुत भीड़ इकट्ठी की हुई है, ये तो पहले सत्संगों में बता रहे हैं । अपना तो कुछ बता नहीं रहे कि उनका क्या अनुभव है ? या क्या नई खोज उन्होंने की है ? अध्यात्म ज्ञान प्राकृतिक विज्ञान है । और ये का यानी अपने अन्दर किसी पूर्ण अनुभवी महापुरूष से सत्संग में बात समझ कर तरीका, ढंग या योग सीख कर खुद साधन-अभ्यास करके अनुभव करने का विषय है । यह केवल पुस्तके पढ़कर उनका ज्ञान दुसरों को बताने तक ही पूरा नहीं होता है । यह केवल कथा ही नहीं है, यह तो स्वयं की खोज करके अनुभव करने का विषय है, परन्तु कथा भी व्यर्थ नहीं है, अपने स्थान पर यह भी ठीक है, क्योंकि इससे सुन्दर संस्कार मिलते है। परन्तु जैसा ये महापुरूष समझते है कि कथा ही ज्ञान है, यह इनका भ्रम या अज्ञान है । धर्म समय के साथ बदलता रहता है । इसका अर्थ यह है कि परमात्मा व आत्मा नहीं बदलते, परन्तु उनकी विधि, साधन, योग के ढंग समय के अनुसार और मनुष्य की प्रकृति के अनुसार बदलते रहते है और यहा सत्संगो में यह देखने में आता है कि

उन्हीं पुरानी बातों को, ढंग को और कथाओं को ही सत्संगो में दोहराया जा रहा है। यह समय विज्ञान और बुध्दि का है। बुध्दिमान मनुष्य धर्म में नई खोज चाहते है और यह खोज योग-अभ्यास करके अपनी खुद के मस्तिष्क में अनुभव करने से होगी।

मेरे अपने साथ जो गुजरी दुनियां के विचार से और अध्यात्म के विचार से वह ऐसा रहा कि इस दुनिया में मेरा जीवन एक पर्व या त्यौहार की तरह व्यतीत हुआ है। शुरू से लेकर अब अस्सी साल की उम्र तक आधुनिक सब सुविधाओं का आनन्द लेते हुए किसी बात का अभाव जीवन में महसूस नही किया। घर में अपने परिवार से लेकर और बाहर जहां भी मैं रहा, अति प्रसन्नता, उमंग, खुशी, प्रेमभाव से रहा। अधिकतर यहां यह देखा जा रहा है कि अपनी-अपनी अवस्था के अनुसार अर्थ से यानी रूपये-पैसे से लोग सन्तुष्ट नहीं है। परन्तु मुझे अपने जीवन में यह कमी महसूस नहीं हुई और किसी भी बात का अभाव महसूस नहीं किया। इसका यह अर्थ नहीं है कि मैं कोई बहुत बड़ा लखपति हूँ या मेरा बहुत धन बैंकों में है। जैसे आजकल के लोगों का बहुत धन बैंकों में है और वे अनेक आधुनिक सुविधाओं से भरपूर हैं परन्तु फिर भी देखने में वो दुखी हैं। आप मेरा भाव समझ गए होंगे कि इस सांसारिक जीवन में मुझे किसी बात की कमी न तो पहले रही और न अब महसूस करता हूँ। मैं पूर्णकाम योगी हूँ। किसी प्रकार की कोई इच्छा अब शेष नहीं है। मैं यह किसी अहंकार से नहीं कह रहा हूँ। यह शब्द शास्त्रों में आता है कि वह पूर्णकाम योगी था। मैं शत प्रतिशत तो नहीं कह सकता, परन्तु ८०-८५ प्रतिशत मेरी यह अवस्था है और मन की खुशी

की यह अवस्था है कि जैसे कहा है - **''सदा दीवाली साध के और आठों पहर आनन्द''** तथा आध्यात्मिक अनुभव भी बहुत सहज चलते-फिरते, खाते-पीते करता रहता हूँ। कल की और अन्त समय की कुछ कह नहीं सकता हूँ कि क्या गुजरे ? मेरा आध्यात्मिक योग या साधन १९५६ से अब तक केवल आन्तरिक शब्द का रहा है। इसी को ही नाम कहते है और इसी के महापुरूषों ने भिन्न-भिन्न नाम बताये हैं। सुरत का अपने निज घर की तरफ पहुंचने का यही वह साधन है, जो सबसे उत्तम और सहज है। इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरे महापुरूष जो आन्तरिक साधन करते हैं, वो गलत हैं, अपने-अपने स्थान पर जो यह साधन करते हैं तो उनसे किसी को मन का आनन्द मिलता है, किसी को भिन्न-भिन्न प्रकार की सिध्दियां मिलती हैं और जिनका चरित्र अच्छा है, यानी ब्रह्मचर्य कायम है और जो अपने अन्दर प्रकाश का अनुभव करते हैं उनको आत्मिक आनन्द मिलता है। कहने का भाव यह है कि मैं किसी का खण्डन नहीं कर रहा हूँ, क्योंकि मैं रहस्य को जानता हूँ। इसके लिए कबीर साहब ने कहा है –

साध हमारे सभी भले, अपनी-अपनी ठौर।

शब्द विवेकी पारखी, सब में है सिर मौर ।।

मुझे इस साधन के लिए न तो एकान्त में बैठना पड़ता है, न किसी प्रकार के आसन में बैठना पडता है। यानी कुछ भी इसके लिए यत्न नहीं करता हूँ। चलते-चलते, खाते-पीते, सफर में, जहां भी होता हूँ, सहज ही अन्तर में जीवन धारा की ध्वनि अनुभव करता रहता हूँ। सुरत या (Attention) सहज ही उपर की ओर खिंची रहती है और सहज

ही मीठा आनन्द बना रहता है यानी अपने आप ही समता बनी रहती है। जैसा कबीर साहब ने कहा है –

सहजे ही धुन होत है, हरदम घट के माहि ।

सुरत-शब्द मेला भया, मुह की हाजल नाहि ।।

और समाधि की स्थिति कबीर के नीचे लिखे शब्द से मेल खाती है।

सन्तों सहज समाधि भली ।

१. **गुरु प्रताप भयो जा दिन से, सूरत न अन्त चली ।**
गृह उद्यान एक सम देखूं, भाव मिटा दूं दूजा ।। सन्तों....

२. **जहां-जहां जाऊं, करू परिक्रमा, खाऊं पीऊ सो पूजा ।**
जब सोऊं तब करूं दण्डवत् पूजू और न देवा ।। सन्तों....

३. **आंख न मुंदू कान न रूंधू, काया कष्ट ना धारू ।**
खुले नयन से हंस-हंस देखूं, सुन्दर रूप निहारूं ।। सन्तों...

४. **शब्द निरन्तर मनवा राता, मलिन वासना त्यागी ।**
उठत बैठत कबहूं न विसरे, ऐसी ताड़ी लागी ।। सन्तों....

५. **सुख-दुख से एक परे परम पद, तेहि सुख रहा समाई ।**
कहे कबीर यह उन्मुन रहनी, सो प्रगट कर गाई ।। सन्तों...

कहने का भाव यह है कि सहज ही ध्यान अर्न्तमुखी होता रहता है, कुछ यत्न करने की बात नहीं है। तो यह मनुष्य के अपने अनुभव का विषय है मैं यह बताना चाहता हूँ कि जिस साधन व समाधि के लिए हमारे पिछले

महापुरूषों को घर-बार, बाल-बच्चे छोड़कर जंगल-पहाडों में जाना पड़ा और बहुत यत्न करना पड़ा, मैंने ऐसा कुछ नहीं किया और न कुछ करने की आवश्यकता हुई। यह बात पहले भी रही है। जैसे हमारे गुरु-पीर-पैगम्बर ने बकरी चराते हुए, कपड़े बुनते हुए, जूत गांठते हुए तथा राजगद्दियों पर बैठे हुए इस ज्ञान को पाया है। मतलब यह है कि यह प्राकृतिक सहज अनुभव का ज्ञान है, जो मैंने आपको ऊपर बताया है। अतः मैं कोई नई बात अनुभव की नहीं कर रहा हूँ। यह सन्तगति या फकीर गति मन-आत्मा का सहज योग है। जो आदमी जहां भी खड़ा है या जो भी काम कर रहा है, मजदूर से लेकर राष्ट्रपति तक का कार्य करते हुए सन्तगति की रहनी जी सकता है। कहने का भाव यह है कि सन्त या फकीर की एक सहज रहनी है और अनुभूति है, जो समस्थिति में जीवन गुजारता है। जैसे पंजाब के `वारेशाह' एक मामूली किसान ने खेती-बाड़ी करते हुए उस परमात्मा को जान लिया तथा राजा जनक ने राज करते-करते उस मलिक को पा लिया। यह न समझा जाए कि जिस महात्मा के पास बहुत चेले हों या बहुत बड़ा आश्रम हो वही सन्त होता है। यह तो अपने ही शुभ कर्मो का फल होता है। कोई राजा बनकर पूजता है, कोई धनवान बनकर तो कोई और किसी ढंग से मान सम्मान पाता है। सन्त या फकीर एक समस्थिति में रहने वाला होता है, जिस पर बाहर के हालात का, जिसको काल और माया कहते हैं, बहुत कम असर होता है। यानी वह लाभ-हानि, जन्म-मृत्यु में अडौल (सम रहकर) जीवन व्यतीत करता है और सन्त के कोई सींग नहीं होते और न ही वह शरीर का कोई वेष बनाता है। जैसे कबीर साहब ने कहा है –

क्या मला मुद्रा के पहने, चन्दन घिसे ललारा।

मूंड, मुंडाए, सिर जटा रखाए, अंग लगाए छारा ।।

क्या पूजा पाहन की कीजे, जो नहीं तत्व विचारा ।।

यानी शारीरिक वेश-भूषा सन्त के लिए कोई महत्व नहीं रखते । दूसरा वह हर समय परमात्मा की रजा में राजी रहता है । इसको आप जीवन्मुक्त अवस्था कह सकते हो । यानी जिस मुक्ति, मोक्ष या निर्वाण की चर्चा है, जीवित अवस्था में, वह उसका आनन्द भोगता रहता है । मरने के बाद वाली मुक्ति के बारे में तो आज तक जितने सन्त, फकीर, महात्मा यहां से गए हैं, किसी ने वापिस आकर किसी रूप में कुछ बताता है, वह सत्य नहीं हो सकता । वह तो मन पर पड़े हुए संस्कार हैं, जो भासते हैं, परन्तु सत्य नही हैं । इसका प्रमाण मुझ पर विश्वास रखने वाले भाई, बहन, बेटियों के अन्दर मेरा रूप प्रकट होकर उनकी मदद करता है और मुझे इसका ज्ञान नहीं है और मैं भी जीवित हूँ और किसी के अन्दर नहीं जाता और न ही मैं यह जानता हूँ कि कौन मेरा ध्यान करता है । तो यह बात प्रमाणित हुई कि जब मैं जीवित होकर कही नही जाता तो कौन महात्मा या देवी-देवता आकर प्रकट होगा ? तो प्यारे सज्जनों यह सब उस ध्यान करने वाले सज्जन का विश्वास है । अतः उसका मन ही उसके इष्ट को प्रकट करता है । यह शक्ति विश्वास करने वाले में है, इष्ट में नहीं, यह मेरा अनुभव है, कोई दावा नहीं है कि जो मैं कह रहा हूँ वही सच है ।

3

कर्म - गति रहस्य

महापुरूषों ने शास्त्रों में कर्म तीन प्रकार के कहे हैं – संचित प्रारब्ध व क्रियमान । संचित कर्म वे है, जो जन्म-जन्मान्तरों से मनुष्य ने शुभ और अशुभ कर्म किए हैं और जिनको वह भोग नहीं सका है । वे कर्म उसके खाते में जमा होते रहते हैं । इन्हीं संचित कर्मों से चुनकर शरीर धारण करके कुछ शरीर, कुछ मन और धन की कमी ज्यादा होने पर भोगता है । यानी यह जीवन ही प्रारब्ध कर्म भोगने का है । जब उसके ये प्रारब्ध, जिनको भोगने के लिए मनुष्य ने शरीर धारण किया, समाप्त हो जाते है, तो चाहे उसकी आयु छोटी हो, आधी हो या वृध्द अवस्था हो, वह इस मनुष्य शरीर से चला जाता है । तीसरे है क्रियमान कर्म, जिन्हें हम प्रारब्ध जीवन जीते हुए, अच्छे या बुरे कर्म करते हुए भोगते हैं । इनमें से कुछ कर्मों का फल तो हम साथ-साथ भोग लेते हैं और जो बच जाते हैं, वह फिर संचित कर्म में शामिल हो जाते हैं ।

यदि कोई मनुष्य इसी प्रारब्ध कर्म को भोगते हुए किसी शुभ कर्म के कारण किसी गुरू महाराज जी के सत्संग से कर्म की बात समझ ले तो आगे के जो क्रियमान कर्म बनते हैं, उनको योग-अभ्यास से बन्द कर सकता है । जैसे गीता में भगवान कृष्ण ने अपने प्यारे भक्त श्री अर्जुन को बताया है कि तुम कर्म तो करो परन्तु निष्काम कर्म करो । इसकी विधि

यह बताई कि तुम जो भी काम करो भगवान के लिए करो। दूसरा तरीका यह है कि तुम कर्म तो करो परन्तु उसके फल की इच्छा मत करो, इससे आगे के क्रियमान कर्म नहीं बनेंगे। यदि सत्संग से जीव को होश आ जाए यानी ज्ञान हो जाए तो वह अपने जन्म-जन्मान्तरों के सभी कर्मो को ज्ञान की अग्नि से जलाकर भस्म कर सकता है। उसको जन्म लेकर दोबारा यहां नही आना पड़ेगा। वह सदा के लिए उसी भगवान या परमात्मा रूपी समुद्र में अपनी बूंद रूपी आत्मा को मिला देगा।

इस विषय में मेरा क्या अनुभव है ? जो मैंने योग साधन से अनुभव क्रिया है। मैं १९५६ से इस योग-साधन का अनुभव करता आ रहा हूँ और लगभग रात और दिन के अधिक समय अपनी सूरत या Attention (ध्यान) को उससे लगाए रखता हूँ। कभी-कभी बाहर के प्रभाव से उसको भूल जाता हूँ और उसी जगह जाकर स्थिर हो जाता हूँ और जब यह शरीर छूटेगा, तब यही अनुभव रहा या होश रहा तो सिध्दान्त के अनुसार उसी समुद्र में ये मेरी बून्द रूपी आत्मा मिल जायेगी और यदि उस समय होश न रहा तो कुछ कहा नहीं जा सकता। परन्तु मेरे दोनों हाथों में लड्डू हैं, यदि मैं वापिस यहां इसी लोक में आया तो मुझे बहुत खुशी होगी। क्योंकि इस लोक का जीवन मैंने बहुत ही खुशी, आनन्द वे प्रेम-प्यार से जिया है। जीवन के हर तरह के आनन्द व खुशी का यहां अनुभव करता आ रहा हूँ और अब इस अस्सी साल की आयु में मैं हर रोज एक पर्व या त्यौहार को मनाते हुए सा जी रहा हूँ। जैसे कहा है –

''सदा दीवाली साध के और आठों पहर आनन्द''

यानी कि जिस स्वर्ग कु सुख की चर्चा शास्त्रों में है, उस सुख का अनुभव मैं इसी धरती पर लेता आ रहा हूँ, कल का कोई दावा नहीं है। दूसरी एक और बात जो मुझे गुरु आज्ञा से करनी थी, वह यह कि उनके ज्ञान का खुद अनुभव करके मनुष्य जाति जो यहां अज्ञान से दुखी है, उसको ज्ञान देना था। परन्तु मेरी तो अब तैयारी ही करते-करते बहुत जल्दी ही अस्सी साल की उम्र हो गई है। अब मेरे पास प्यारे भाई-बहन, बेटियों की तरफ से इस ज्ञान को देने के लिए ऑस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड से निमन्त्रण आ रहा है कि मैं वहां जाकर उनको गुरु ज्ञान दूं, ताकि उनके सब दुःख दूर हों। परन्तु अब समय नहीं रहा कि पूरी दुनियां के मनुष्यों को जो दूर-दूर समुद्र पार व टापुओं में बसे हुए हैं, उनको जाकर सुख-शान्ति वाला ज्ञान दूं। अभी तो भारत में भी सब तक गुरु का ज्ञान नहीं पहुंचा सका हूँ। कहने का भाव यह है कि मुझे यदि गुरु महाराज वापिस इस लोक में भेज देंगे तो मैं बहुत ही धन्यवाद करते हुए और दण्डवत् प्रणाम करते हुए आने को तैयार हूँ। मुझ पर तो यहां इस जीवन में गुरु महाराज की दया मेहर की वर्षा होती रही है। स्वास्थ्य, प्रसन्नता, धन, मान किसी भी बात का अभाव नही रहा है। स्वर्ग जैसा जीवन और मुक्ति का आनन्द अपने जीवन में भोगता आ रहा हूँ। प्यारे सज्जनों ! अब मेरा जीवन क्या है ? मैं हर समय गुरु की रजा में राजी हूँ और उसकी मौज में रहता हूँ। वह चाहे तो अपने में मिला ले जिस समुद्र की मैं बून्द हूँ और चाहे तो वह इस दुनिया में भेज दे, जो इतनी

सुन्दर है कि जहां भी मेरी नजर जाती है तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सब में गुरु या परमात्मा आप ही खेल रहा है। जैसा कि कहा है –

''जिधर देखता हूँ उधर तू ही है ।

हर शै में जलवा तेरा हूबहू है ।।''

अर्थात मुझे यहां तथा वहां कोई अन्तर नजर नहीं आ रहा है । यहां खेल खेल रहा हूँ और वहा उसकी मौज से चुप व शान्ति है। यानी जब उस अनुभव में रहता हूँ तो एक शब्द है और दूसरी मेरी सूरत है, जो उसको अनुभव करती है । जब उसमें यानी शब्द में सूरत मिल जाएगी तब न एक रहेगा अन्यथा बून्द समुद्र में मिल जाएगी । फिर किसने लिखना है और किसने बताना है ? जो बुन्द उसमें वहां जाकर मिल गई तो वापिस आकर उसने नहीं कहा कि अब वहां जाकर मिल गई तो वापिस आकर उसने नहीं कहा कि अब वह कहां गई और वहां का क्या हाल है ? बाकी तो मेरे अनुभव के अनुसार जीव माँ के गर्भ से लेकर आखिर तक अपने ही संस्कारों के अनुसार इस जीवन का खेल खेलता आ रहा है।

वैसे तो कुछ महात्माओं ने भी लिखा है और मेरा भी यही अनुभव है कि सच्चाई न तो लिखी जा सकती है और न बताई जा सकती है, और जो बताया जाता है या लिखा जाता है, वह सच्चाई नहीं हो सकती। जिस सज्जन का यह जानना हो कि सच्चाई क्या है तो वह स्वयं इसका अनुभव कर ले। जैसे गुड का स्वाद कोई सज्जन कलम से लिखे या मुंह

से बताए तो वह ठीक नहीं बता सकेगा । उदाहरण भी यदि वह दूसरी चीजों का देगा तो वह ठीक नहीं होगा । तो ठीक यह होगा कि एक टुकडा गुड़ का तोड़कर उसको देकर कहे कि इसको खुद खाकर देख लो, कैसा मिठास है ? फिर कुछ बोलने या लिखने की जरूरत नहीं होगी कि गुड़ का स्वाद कैसा है ? कहने का भाव यह है कि इस सच्चाई को स्वयं मनुष्य अनुभव कर सकता है । पुस्तकों में तो दूसरे सज्जनों का अनुभव है जिसे उन्होंने बताने का यत्न किया है परन्तु वह यथार्थ बता या लिख नहीं सके। हां संस्कार छोड़ गए है । साफ बात है कि ``पुस्तकों में राजे खुदा नहीं है'' । यानी पुस्तक पढ़ने से यह अन्तर का अनुभव नहीं हो सकेगा, केवल मन का आनन्द अवश्य मिलेगा और कुछ सुन्दर संस्कार जो उस लिखने वाले महापुरूष के हैं, वो संस्कार किसी हद तक जरूर मिलेंगे । अर्थात अच्छी पुस्तकों से अच्छे संस्कार अवश्य मिलते हैं । यदि पुस्तकों से यह परम शन्ति और परम आनन्द वाला ज्ञान मिलता तो आप खुद ही देख ही देख लो कि हर घर में रामायण, गीता और दूसरे धर्मो के बाईबल, कुरान शरीफ आदि ग्रन्थ रखे हुए है और लोग उनका पाठ भी करते हैं, परन्तु मनुष्य जाति फिर भी दुःखी है और शान्ति किसी को नही है । इसके लिए वक्त गुरु जो खुद पूर्ण विवेकी हो, उसकी संगत, दर्शन और मार्गदर्शन की आवश्यकता है । पिछले लोगों को भी इस ज्ञान का अनुभव किसी वक्त गुरु से हुआ था और आगे भी उसी से होगा ।

अब मैं धर्म, कर्म और इस दुनियां के सुख शान्ति से जीवन गुजारने के विषय में यह समझा हूँ कि मेरे साथ जे गुजरी, वह तो मेरे ही

कर्मो का फल है और मुझे जो सतगुरु मिले तथा जीवन के हर क्षेत्र में मुझे जो आनन्द, खुशी, सफलता, साधन अपने आप मिलते गए, ऐसा मैं आम आदमी के जीवन में नहीं देख रहा हूँ। हर आदमी के अपने-अपने शुभ और अशुभ कर्म होते है, जिन्हें भोगने के लिए वह यहां जन्म लेकर आता है। इसलिए भगवान मनुष्य को पुरूषार्थ यानी हिम्मत की शक्ति देता है जैसा कि कहा है –

''हिम्मते मर्द और मदद ए खुदा''

अर्थात् मनुष्य को अपने सब कर्म भोगते हुए हिम्मत रखनी चाहिए और आस-विश्वास रचना चाहिए। इससे वह गुरु या भगवान जिस रूप में उसने मान रखा है, जरूर मदद करेगा। इसलिए मैंने इस लेख में बार-बार इस एक ही बात पर जोर दिया है कि यह लोक वासना, इच्छा या संकल्प का है क्योंकि मैं यह बात जानता हूँ कि जब मनुष्य के अशुभ कर्म आगे आ जाते है तब विचार सुन्दर नहीं रहते तो उस वक्त मनुष्य को भगवान के द्वारा दिए गए पुरूषार्थ या हिम्मत का ध्यान रखना चाहिए।

अतः मनुष्य को इस जीवन में किसी महापुरूष के चार-पांच सत्संग सुनकर यदि उसका विश्वास बैठ जाए तो उसे गुरु बना लेना चाहिए। यानी भगवान तो आज तक किसी ने देखा नहीं है, क्योंकि वह मनुष्य के मन में ही अंश रूप में बैठा है। अतः उस गुरु के रूप में उसे भगवान मानकर जब-जब समय मिले, उस गुरु के सत्संग पूरे ध्यान से सुने और दर्शन करें। अपने जीवन को सुखमय व आनन्दमय बनाने का

यह आसान तरीका है । इससे जो भी अशुभ कर्म है, वह बहुत ही सहज में कटते जाएंगे और शुभ कर्म बनते जाएंगे । यानी इससे हमारे दोनो हाथों में लड्डू आ जाएंगे । एक तो उसे इस जीवन में गुरु का बहुत बड़ा सहारा रहेगा । वह हर काम उसका ध्यान करके करेगा तो गुरु या परमात्मा उसका सहायक रहेगा । दूसरा, उसके जो शुभ या अशुभ कर्म हैं, वह सहज में कटते जाएंगे क्योंकि वह आपको योग सिखा देगा, जिससे जब आप चाहोगे, भगवान को अपने मन में रखते रहोगे । अतः सत्संग सुनकर, ठीक समझकर, विश्वास आने पर ही गुरु बनाना चाहिए । इस काम में जल्दबाजी नहीं करनी चाहए और न ही भेड़-चाल में आना चाहिए, क्योंकि यह काम विश्वास का है और जब गुरु बना लिया जाए, तब उसे आदमी नहीं समझना चाहिए । भगवान मानकर ही उसके पास जाना चाहिए । तब जो भी इच्छा लेकर जाओगे, अवश्य पूरी होगी । खेल सब विश्वास का है । साथ ही घर में अपने माँ-बाप व बड़ों की सेवा करो तथा घर में शान्ति बनाए रखो । हम गृहस्थी हैं । हमारा धर्म और है तथा सन्यासी का धर्म और है । रामायण में कहा है कि –

``शठ सुधरहि सत्संगति पाए ।

पारस परस कुधात सुहाए ।।

भाव यह है कि मूर्ख मनुष्य सत्संग से सुधर जाता है और उसको ज्ञान हो जाता है । जैसे पारस के साथ लोहा, जिसको कुधात कहा है – छूने से सोना बन जाता है । तो इस तरह हमारा सुधार किसी जीवित

महापुरूष की संगत, दर्शन, वचन सुनकर हो जाएगा इसलिए कहा है –

''गुरु पर डालूं तन मन वार, गुरु पर जाऊं मैं बलिहार''

तो प्यारे सज्जनों ! मेरा काम इस बात से ही हुआ है। मैं धर्म-कर्म की कोई बात नहीं जानता था और न ही मैंने सांसारिक या आध्यात्मिक उन्नति के लिए कोई यत्न किया। मैंने तो थोड़े ही समय में गुरु महाराज पण्डित फकीर चन्द जी के स्वरूप में उस परमात्मा को माना था, जिसके फलस्वरूप उस तत्व ज्ञान का अनुभव मुझे उसी समय हो गया और उसी अनुभव की वर्षा आज तक हो रही है। आगे की कुछ कह नहीं सकता। तो प्यारे सज्जनों, मैंने आपको यह आखिरी मन्त्र कुंजी या सूत्र अपनी समझ के अनुसार बता दिया, जिसके आस-विश्वास से मैं इस संसार में स्वर्ग जैसा सुख भोगते हुए जीवन बिता रहा हूँ और इसी प्रकार तुम भी बिता सकते हो। साथ ही मैने यह बात भी स्पष्ट कर दी है कि मेरा रूप प्रकट होकर जो जगह-जगह लोगों की मदद करता है, वह मैं नहीं हूँ अपितु उन्हीं के संस्कार हैं जो उनके मन पर पड़े हुए हैं और उनका मन ही उस रूप को प्रकट करके काम करता है। बाहर से कोई गुरु, राम या देवी-देवता नहीं आता। धर्म में यह बात सदा से रहस्य में रही है। पिछले महापुरूषों ने तथा आज के महापुरूषों ने इस रहस्य को नहीं खोला। शायद इसी में कोई भलाई हो, मैं नही जानता। उनकी बात वे जाने। मेरे गुरु महाराज जी ने साफ कहा था और वे चाहते थे कि खुद अनुभव करो और जो बात आपके अनुभव में आए वह साफ और सच्ची बताओ। चार दिन का जीवन है। अपने मनुष्य जीवन की चादर

को मैली मत करो। यही बात रहस्य में कबीर साहब ने कही है –

न कुछ किया न कर सके, न करने योग्य शरीर

जो कुछ किया सो हरि किया, भए कबीर कबीर ।।

ऊपर जो कबीर साहब ने कहा है, उसका असली भाव तो वही जानते होंगे, परन्तु मैंने जो समझा है वह यह है कि यह बात उन्होंने रहस्य में कही है। `हरी' के अनेक अर्थ हैं जिसमें एक अर्थ है `मन'। अतः उनका कहना है कि भाई जो कुछ किसी के साथ घटित होता है, वह उसी के मन के आस-विश्वास का फल है तथा नाम मेरा हो जाता है।

यह विषय बहुत सूक्ष्म है जो लिखने में पूरा नहीं आ सकता। यह तो सामने बैठकर ही किसी पूर्ण अनुभवी पुरूष के सत्संग में ही समझा जा सकता है। अर्थात उस सत्संग को ध्यान से सुनना, उस पर मनन करना तथा अमल करने से ही लाभ हो सकता है। उसमें जो आपको अनुभव होगा, वह सही होगा, क्योंकि यह विषय अनुभव का है। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है –

जब तक न देखो अपने नैना।

तब तक न मानो गुरु के बैना ।।

4

मनुष्य जीवन क्या है?

जीव यहां प्रारब्ध जीवन के संस्कार भोगने आता है। अदि उसने कोई शुभ कर्म किया हुआ है तो वह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन का आनन्द लेते हुए यह जीवन गुजारेगा। दूसरा यदि उसके अति शुभ कर्म हैं तो उसको कोई पूर्ण अनुभवी महापुरुष मिलेगा, जिसको वक्त गुरु कहते हैं, उसकी कृपा से उसके सब प्रकार के भ्रम नष्ट होंगे। जैसे कहा है-

''गुरु मिले तो भ्रम नसाहि''

इसी विषय में और भी कहा है-

''संशय काल शरीर में जार किए सब धूर।

काल से बचे दासजन, जिन पर दयाल हजूर।।'' (कबीर)

यहां पर यह दयाल हजूर कौन हैं? जीता जागता पूर्ण अनुभवी पुरुष। इसी को वीतराग पुरुष कहा है, इसी को पूर्णकाम योगी कहा है। इसी से मनुष्य के सब भ्रम व भय नष्ट होते हैं और इसी महापुरुष के सत्संग सुनते हुए, दर्शन व सेवा करते हुए मनुष्य यह कर्म की फिलोस्फी समझ जाता है कि ''जैसा-जैसा मैं कर्म करुंगा, वैसा-वैसा ही भोगूगा''।

अतः वह सावधान हो जाता है। मन, वचन व कर्म से किसी को दुःख नहीं देता, यानी अहिंसा करता है। फिर उसे यह समझ आ जाती है कि मेरे जो संचित कर्म इकट्ठे हैं उन्हें कैसे समाप्त किया जाए? तब

गुरु कृपा करके इन सब कर्मों को खत्म करने या इसी जीवन में भोग कर सब तरह से मुक्त होने का आसा ढंग बता देता है कि प्यारे, ज्ञान की अग्नि से इन सब जन्म-जन्मान्तरों से संचित, प्रारब्ध व क्रियमान कर्मों को जलाकर भस्म कर दो, तो यह ज्ञान भी वक्त गुरु जो अब देह में हाजिर है, वही देगा। कहने का भाव यह है कि आपने यदि किसी को गुरु माना और यदि उसके समय या उपस्थिति में यह बात समझ कर अनुभव में आ गई तो दूसरा या तीसरा गुरु बनाने की जरुरत नहीं है। जो महापुरुष गद्दी पर बैठे हैं और सत्संगियों को कृपा करके समय के अनुसार ज्ञान दे रहे हैं तो आप उनका मान-सम्मान करें । यदि वे आपसे कुछ जानना चाहें तो उनको मार्गदर्शन या अपान अनुभव बताए नही तो किसी को व्यर्थ में कुछ कहेने की आवश्यकता नहीं क्योंकि जैसा कोई करेंगा, वैसा भरेगा। किसी के खण्डन-मण्डन की कोई बात न हो। क्योंकि यह किसी का दावा नहीं हो सकता कि जो उसने अनुभव किया है, वही सच्चाई है। हर किसी की अपनी अलग-अलग खोज व अनुभव है। सब एक ही बात की खोज नहीं करते हैं। मनुष्य की प्रकृति भिन्न-भिन्न है परमात्मा की खोज करते-करते मनुष्य अपनी ही प्रकृति के अनुसार काल और माया के जाल में उलझ जाते हैं। भगवान की लीला या माया बहुत लम्बी-चौड़ी है। आप पहले महापुरुषों के अनुभव और खोज को देखो। सबसे अपने-अपने स्वभाव या संस्कारों के अनुसार ही अपनी खोज या अनुभव बताए हैं। तो इस सूक्ष्म बात को कोई साधक या अनुभवी सज्जन ही समझेगा। वैसे तो मेरे मातनुसार भगवान की माया या लीला को मनुष्य क्या समझेगा जैसा गुरु नानक देव जी ने भी कहा है-

''तुमरी गतमत तुम ही जानी,

नानक दास सदा कुर्बानी।''

अर्थात यह मनुष्य भगवान का ही छोटा रुप है। इसमें छोंटे पैमाने पर वह सब कुछ है, जो भगवान में है। यानी मनुष्य के अन्दर पूरी दूनियां बसी हुई है। जैसे- १. भगवान पैदा करता है, २. पालन-पोषण करता है, ३. संहार करता है। तो सब गुण मनुष्य में छोटे पैमाने पर है। परन्तु भगवान तो भगवान ही है और मनुष्य मनुष्य ही है यह बात समझ कर उसका कोई रुप बनाकर सहारा लो। बाद में आगे साधन-अभ्यास में शब्द का सहारा लो, जिसको नाक कहा है। इसी साधन के समय किसी-किसी को जिसका ब्रह्मचर्य कायम हो, प्रकाश का अनुभव होता है, जो अति आनन्द का है। नाम गुरु से ही मिलेगा, जो इस समय गुरु का काम करता है यानी जो स्वयं नाम के रंग में रंगा हुआ है।

अब आप वैज्ञानिक तरीके से समझिए कि मनुष्य जीवन क्या है? यह शरीर, मन, आत्मा, विशुद्ध आत्मा-जिसे सन्तों ने सुरत कहा है, उसका मेल है।

शरीरिक रुप से मनुष्य जो भोजन करता है, उससे उसका शरीर बनता है और भोजन सम्बन्धी सभी खाद्य-सामाग्री पृथ्वी की गर्मी व सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न होती है।

मानसिक रुप से मनुष्य जीवन संस्कारो का है, जिन्हें वह देखता, सुनता या पढ़ता है और इन्ही संस्कारों की छाप उसके मन पर पड जाती है, जिनको वह सत्य समझता है। बाहर के ग्रहों की Radiation से यह संस्कार प्रकट होते रहते हैं। पृथ्वी पर मनुष्य भी एक

ग्रह है, क्योंकि जैसा मनुष्य होता है, उसकी Radiation से भी विचार प्रकट हाते है।

आत्मिक रुप से मनुष्य आनन्द का स्वरुप है। यहां पर मनुष्य जिस चीज का आनन्द लेता है, जैसे खाना, पीना, सोना इत्यादि तथा जिस भी अन्य कार्य में उसे आनन्द का अनुभव होता है, तो वह सब आत्मा का आनन्द है। आत्मा मनुष्य शरीर में नीचे से लेकर ऊपर तक ऐसे रमी हुई है जैसे दूध में घी।

चौथा, मनुष्य उस मालिक का वह निज रुप है, जो सब कुछ कर्ता-धर्ता है। इसी को जीवनधारा कहा जा सकता है। शास्त्रों में इसे विशुद्ध आत्मा कहा है और सन्तों ने इस समय में इस विषय में आगे की खोज करके इसको सुरत कहा है। यह सब खेल मनुष्य जीवन में इसी का है। साधन-अभ्यास में अपने अन्दर जिस प्रकाश व शब्द का अनुभव किया जाता है, उसको अनुभव करने वाली यह सुरत ही है। यहां पर मन नीचे रह जाता है। उदाहरण के लिए आप किसी कार्य में एकाग्रचित है और उस समय आपके पास से कोई गुजर जाए और कोई अन्य आकर आपस पूछे कि क्या आपने उसको देखा है ? तो आप उत्तर देते हैं कि मैंने ध्यान नहीं किया। यह ध्यान वही सुरत है।

मैंने यहां पर साधारण तरीके से यह समझाने का प्रयास किया है कि मनुष्य जीवन इन चार चीजों के मिलाप से बनता है। यदि इनमें से कोई एक न हो तो मनुष्य अधूरा है।

तो प्यारे सज्जनों, मनुष्य जीवन को ऐसा समझो कि जैसे मछली समुद्र में ही पैदा होती है, उसी में जीती है, उसी में खेलती है, खाती है

और अन्त में उसी में मिल जाती है। अत: हम उस मालिक की मौज से ही पैदा होते हैं, उसकी की मौज में जीवन का सब खेल खेलते हैं और अन्त में उसी में ज्ञान-ध्यान से साधन-अभ्यास करके अपने अन्दर जो जीवन धारा बह रही है, जिसे नाम या शब्द कहा है, यदि मनुष्य का कोई कर्म शेष नहीं है तो उसी में मिल जाते हैं। ऐसा मैने समझा है, क्योंकि मैं उस निज नाम का अनुभव करता रहता हूँ। परन्तु शरीर छोडने के बाद मेरे साथ क्या गुजरे? मुझे कुछ मालूम नहीं। तो मनुष्य जीवन क्या हुआ?

समझत बन, कथन नहीं आवे।

मन वाणी अलसानी।

यानी जीवन संस्कारो का है। जिसको अंग्रजी में कहा है-

" Life is the combination of impressions and suggestions"

सज्जनों, जो मैंने इस लेख में अपने अनुभव के आधार पर लिखा है यह तो मेरा अपना अनुभव और समझ है। मेरा कोई दावा नहीं कि जो मैंने अनुभव किया है, यही सत्य है।

5

नाम - दान

जहां तक नाम-दान की बात है, मेरे अनुभव के अनुसार जो नाम-दान मैंने लिया, वह अलग ही ठंग से है। परन्तु आम आदमी के साथ यह घटना नहीं हो सकती है। मेरे अनुभव के अनुसार मेरे नाम-दान यह है कि मैं सन् १९५६ में किसी खास संस्कार के अन्तर्गत भजन को जानने की इच्छा से कि वह क्या वस्तु होती है? पण्डित फकीर चन्द जी के घर १८, रेलवे मण्डी, होशियारपुर गया था। वहां मैं उनके घर, जहां वह अपने कमरे में बैठे थे, गया। वह अपनी चारपाई पर बैठे हुए थे और उनके सामने उनके गुरु महाराज महर्षि शिवव्रतलाल महाराज जी की संगमरमर की मूर्ति लगी हुई थी, जो आजकल मानवता मन्दिर में लगी हुई है। उन्होंने कुछ नाम-दान की चर्चा की, जो मुझे अब कुछ याद नहीं। उन्होंने यह कहा कि यह सामने मूर्ति वाला महात्मा जब मनुष्य शरीर में था तब मैंने उनको पूर्ण परब्रह्म का रुप मानकर उनकी आमा का पालन सांसारिक जीवन में और धर्म-कर्म के विषय में किया। अब जब मैं समाधि मे जाता हूँ तो उस कुल मालिक का ही रुप बन जाता हूँ और जब शरीर में आता हूँ तो साधारण मनुष्य की तरह काम करता हूँ। यदि तुम इस मूर्ति के ऊपर कूडा-कर्कट डाल दो या कोई अपशब्द कह दो तो यह तुम्हारा कोई नुकसान नहीं करेगी।

उन्होंने मुझसे पूछा कि तुमने इस बात को क्या समझा ? तब मैंने कहा कि महाराज जी , मैं तो कुछ नहीं समझा , तब वो बोले-धर्म विश्वास का विषय है , मेरा विश्वास था कि यह परब्रह्म या कुल मालिक है। आप इसको मालिक नहीं मानते तो यह आपका कोई नुकसान नहीं करेगा। इतना कहकर वह समाधि में चल गए। मैंने एक या दो मिनट में ही यह फैसला किया कि ये बूढे सज्जन सच ही कह रहे हैं कि सब खेल मानने का है। अत: मैं इनको ही भगवान मान लेता हूँ। ऐसा विचार करके मैं आँख बन्द करके बैठ गया। थोड़ी देर में मेरी खोपडी के अगले भाग में , जहां बच्चों का तलवा टिप-टिप करता है , उस स्थान पर मुझे बहुत ही आनन्द देने वाली गुदगुदी हुई और मुझे एक अवर्णनीय आनन्द महसूस हुआ। कुछ देर के बाद पण्डित फकीरचन्द जी महाराज समाधि से शरीर में आए और वे हुक्का पीने लगे। तब मैंने खड़े होकर हाथ जोड़कर कहा कि महाराज मैं अपनी खोपड़ी में एक बहुत ही गजब का आनन्द अनुभव कररहा हूँ , जो अवर्णनीय है। तब उन्होंने कहा कि यही वह भजन है , जो तुम पूछना चाहते थे और उसी शब्द या धुन को नाम कहते है। इसी के साधन से एक दिन तुम सहज में उस परम आनन्द के समुद्र में मिल जाओगे। उस समय से लेकर आज तक मैं उसी आन्तरिक जीवन धारा का अनुभव करता आ रहा हूँ।

अब यह हालात तो मैंने नाम के विषय में आपको अपने बारे में बताई है , परंतु दूसरों को यह अनुभव आमतौर पर ऐसे नहीं होता क्योंकि उनकी प्रकृति भिन्न-भिन्न है। दूसर बात , जो आदमी आजकल आश्रमों में गुरुओं के पास नाम लेने के लिए जाते है , उन्हें यह होश ही नहीं होता

कि नाम क्या चीज है ? वे तो काल कर्म के मारे हुए इस संसार में दु:खों से घिरे हुए होते है और वह संसार की सफलता के लिए गुरुओं की शरण में जाते है। गुरु महाराज जी भी कृपा करके उनको वर्णात्मक नाम सहारे के लिए दे देते है, यह वास्तव में नाम नहीं है, परन्तु एक भेड़-चाल है। परन्तु जहां तक मैं समझता हूँ यह भी गलत नहीं है। यह एक संस्कार है, जो जीव ले लेता है, परन्तु नाम देने वाले की नीयत यॉ्िंग्दह इसके साथ जाएगी। यदि नाम देने वाले की नीयत या विचार यह है कि मेरे बहुत से चेले बन जाए और बहुत बड़ा आश्रम बन जाए तथा चेलों से धन मिले तो राधास्वामी वाणी के अनुसार ऐसा कहा है-

लोभी गुरु लालची चेला।

दोनों नरक कुण्ड में खेला।।

तो अब गुरु और शिष्य दोनों ही जिस भाव या विचार से नाम देते या लेते हैं तो वही संस्कार फले-फूलेंगे। वास्तविक ज्ञान से वे दूर रहेंगे। यह मेरा अपना अनुभव है, कोई दावा नहीं कि यही बात सच है। शायद सच्चाई कुछ और हो। असल में नाम वर्णात्मक नहीं है बल्कि धुनात्मक ही है। चूंकि बिना निजी सहारे कोई वस्तु प्राप्त नहीं होती इसलिए सहारे के लिए वर्णात्मक नाम की जरुरत है ताकि धुनात्मक नाम तक पहुंचा जा सके।

अन्त में मैं यह कहूंगा कि धन्य हैं वे महापुरुष जो अति परिश्रम करके आश्रम बनाते हैं और दु:खी लोगों को नाम-दान के ख्याल से यह संस्कार देते हैं कि सत्संग सुनो और अपने इष्ट व गुरु का ध्यान करो।

यदि जीव गुरु को भगवान मानकर उसका ध्यान करता है और उसका सत्संग सुनता है तो उसका संसार भी बन जाएगा और किसी समय इन निज नाम की जीव को समझ या अनुभूति भी हो जाएगी , परन्तु बात गुरु को भगवान मानने की है।

6

मानव - धर्म

आज के वैज्ञानिक व बौध्दिक युग में या २१ वीं शताब्दा में यह पूरा संसार आधुनिक साधनों से बहुत निकट हो गया है और एक बड़े शहर की तरह बन गया है आर यहां सभी धर्मों के मानने वाले मनुष्यों को एक दूसरे से मिलकर काम करना पड़ता है । तो प्राचीन धर्म जैसे सनातन, आर्य समाज, हिन्दू, बौध्द, जैन, राधास्वामी, इस्लाम, ईसाई इत्यादि ये सब पूरी मनुष्य जाति का धर्म नहीं हो सकते । ये शब्द आज के युग में बहुत छोटे पड़ गए है। अतः मेरे गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी व मेरे अनुभव के अनुसार सब मनुष्यों का एक मानव धर्म ही इस युग में ठीक बैठता है, क्योंकि आप स्वयं सोच सकते हैं। कि परमात्मा दो या चार नहीं है, सब मनुष्यों का एक ही । लोगों ने उनके नाम अपने-अपने ढंग से अलग-अलग रखे हुए हैं। दूसरा आत्मा यह नहीं

कि हिन्दू की ओर हो , ईसाई की ओर हो तथा मुसलमान की ओर हो। यह समकी एक ही है। इसलिए इस युग का धर्म मानवता होना ही उचित है। यानी ठेंतुग्दह द प्र्लिंस्हूग्ब्ठ इसके विषय में महर्षि शिवव्रत लालजी ने ऐसा कहा है - ठॅर्स्हि ाहूगिै प्दर्त ह् ग्ह ानिब्प्हुठ तथा कबीर साहब ने भी कहा है -

नरपशु त्रिया पशु गुरु पशु, वेद पशु संसार।

मानुष वो हि जानिए, जामें विवेक विचार।।

और यही मेरा अनुभव है। जैसा कहा है -

जिधर देखता हूँ। उधर तू ही तू है।

हर शै में जलवा तेरा हूबहू है।।

आज के युग में लोगों में धर्म के विषय में, बहुत ही भ्रम व अज्ञानता है। जैसा गुरुओं के शिष्य कहते हैं कि जो कुछ है, वह मेरा ही गुरु है, दुसरे गुरु कुछ नहीं। इसी प्रकार अलग-अलग सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने धर्म के बारे में ऐसा कहते हैं कि सनातन धर्म के सिवाय और कुछ नहीं, क्योंकि यही पुराना धर्म है । इसी तरह आर्य समाजी, जैनी, सिक्ख, राधास्वामी, मुसलमान, क्रिश्चियन आदि सबका यही कहना है कि धर्म तो उन्हीं का ही श्रेष्ठ है, बाकी पूरी दूनियां में धर्म के नाम पर तरह-तरह के उपद्रव व लड़ाई-झगड़े हो रहे है। जैसे भारत में आयोध्या में बाबरी मस्जिद व राम-मन्दिर को लेकर कितने झगड़े चल रहे है। बड़े-बड़े नेता वा सनातनी सब यही कहते हैं कि भगवान इसी आयोध्या में ही है और मुसलमान कहते हैं कि खुदा बाबरी मस्जिद में है कितनी

अज्ञानता व भ्रम आज के बुद्धिजीवियों में है और इसी अज्ञानता से मनुष्य जाति का हमेशा से खून बहता आ रहा है और अब भी बह रहा है। इन्ही सज्जनों के उद्धार के लिए मैं यह मानवता धर्म बताना चाहता हूँ कि हिन्दू व मुसलमान के दो खुद या राम नहीं हैं तथा खुदा व राम अयोध्या में ही नहीं बैठै हैं वह तो हर इन्सान के अन्दर हैं। यदि इन्सान को यह विवेक हो जाए तो वह किसी का खण्डन-मण्डन नहीं करेगा। जैसा कहा है -

मन्दिर तोड़ो मस्जिद तोड़ो, क्योंकि ये इन्सान ने बनाए हैं।

मगर किसी का दिल न तोड़ो, क्योकि ये भगवान ने बनाए हैं।।

यह समझ यदि धर्म के ठेकेदारों, बुद्धिजीवों तथा राजनैतिक नेताओं के विचार में आ जाए तो ये मन्दिर, मस्जिद, चर्च आदि के सब झगड़े समाप्त हो सकते हैं और विश्व में किसी हद तक शान्ति की स्थापना हो सकती है।

यदि कोई पूर्ण विवेकी, अनुभवी महापुरुष के सामने बैठकर कोई चार-पांच सत्संग ध्यान से सुन ले तो धर्म के विषय में लोगों में किसी प्रकार का भ्रम या शंका नहीं रहनी चाहिए, क्योंकि मेरा धर्म अन्तर्राष्ट्रीय है और यह सबके लिए है । वैसे आज तक जो परमात्मा के विषय में या धर्म के विषय में जो कुछ कहा गया है और लिखा गया है, वह चीन के महात्मा लोओत्से व मेरे अनुभव के अनुसार सच्चाई न तो बताई जा सकती है और न कुछ लिखी जा सकती है। जो लिख जाता है या बताया जाता है, वह सच्चाई नहीं हो सकती महापुरुषों ने परमात्मा के विषय में

अपने-अपने अनुभव के अनुसार बताने का प्रयास किया है। तो उस सच्चाई को जानने के लिए किसी हाजिर, पूर्ण अनुभवी महापुरुष के पास बैठकर उस सच्चाई का खुद अनुभव किया जा सकता है। वह अनुभव क्या है? वह अनुभव यह है कि मनुष्य कहां से आया है और कहां जाएगा? इसको वह स्वयं अनुभव करके जान ले। जैसे कबीर साहब ने भी कहा है -

कहां कहें अनकही भली है।
वहां तो वेदशास्त्र कछु नाहि
वहां अकथ यहां कथा चली है
कहें कबीर सुनो भाई साधो
सोहम् हंसा सर्वमयी है।

तो मेरे मतानुसार स्वयं को जानता ही सब कुछ है। यानी

"Self Realisation is all and everything"

यहां मैनं अपने टूटे-फूटे शब्दों में अपना अनुभव व विचार बताने का यत्न किया है, क्योंकि जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ, उसके लिए मेरे पास कोई उचित शब्द नहीं है। तो यह मेरा कोई दावा नहीं है, हो सकता है वह सच्चाई कुछ और हो, जिसे मैं नहीं जान सका।

❐ **राधा स्वामी**